मई 2015 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

मई-2015

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि लच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैति।। — (यजुर्वेद 1/5)

हे परमेश्वर, आप शक्तियों के एक मात्र केन्द्र हैं। जो शुभ संकल्प के साथ सत्य मार्ग पर चलना चाहते हैं, आप उनकी सहायता अवश्य करते हैं। मैं असत्य को छोड़कर सत्य-मार्ग पर चलने का व्रत ले रहा हूँ। इसे पूरा करने की आप मुझे सामर्थ्य दीजिए ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः!!!

वर्ष : 82 अंक : 10	मई-2015	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

विनय

प्रभु जी का बस अहै हमारी।
जब चाहत तब भजन करावत, चाहत देत बिसारी।।
चाहत पल छिन छूटत नाहीं, बहुत होत हितकारी।
चाहत डारि सूखि पल डारत, डारि देत संसारी।।
कहँ लगि बिनय सुनावौं तुम तैं, मैं तो अहौं अनारी।
'जगजीवन दास' पास रहे चरनन, कबहूँ करहु न न्यारी।।

— संत श्री जगजीवनदास जी

अमृत बिन्दु

पल मात्र की उपासना का फल

— परमपूज्य गुरुदेव

उपासना व नजदीकी होते ही उसके आनन्दमयी रूप की जरा सी झलक मिलते ही मनुष्य एकदम कैसे बदलता है ? उसके अज्ञान का पर्दा एक क्षण में कैसे हटता है ? इस पर हजरत मूसा की एक बड़ी अलौकिक गाथा है, वह बड़ी अच्छी तरह इस प्रश्न पर प्रकाश डाल रही है उसको सुनाते हैं—

हजरत मूसा रास्ते में चले जा रहे थे । उन्होंने देखा एक कुपढ़ और मूढ़ गड़रिया आँखें बन्द किये एक वृक्ष के नीचे बैठा कुछ बड़बड़ा रहा है । उसके मुख पर प्रसन्नता है, शरीर निःचेष्ट है, बाहरी सुधि-बुद्धि उसकी लुप्त है । हाँ ! किसी से बातें करते हुए जान पड़ता है, जैसे सूक्ष्म जगत् में कोई उसके सम्मुख खड़ा हो, उसी की ओर उसका पूरा ध्यान है, उसी को संकेत कर वह अपनी कहे जा रहा है । मैं क्या कह रहा हूँ, और कोई दूसरा भी वहाँ सुनने वाला खड़ा है, इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है । मानो ! उसे प्रेम समाधि लग रही हो ।

मूसा उसके समीप गये, चुपके से उसकी बातें सुनने लगे । वह कह रहा था—'या खुदा ! मेरा सर्वस्व तेरे अर्पण है, तू अगर भूखा हो तो मेरी सारी भेड़ों का मीठा और स्वादिष्ट दूध पी, अगर तुझे जाड़ा लग रहा हो तो यह मेरा कम्बल ओढ़, यदि तू थक गया हो तो मैं तेरा जिस्म दबाऊँ तुझे जो कुछ तकलीफ हो वह मुझसे कह, मैं उसी के दूर करने का उपाय करूँ। मेरे पास जो कुछ भी है वह तेरा ही है । तू उसको भोग और सुखी रह, तेरे किसी भी कष्ट के लिए मेरी जान निछावर है' इत्यादि । यह अवस्था ही 'उपासना या हुजूरी' कहलाती है । इसमें समाधि आती है, पर मैं और तू की द्वैतावस्था मौजूद रहती है। उपासक अपनी भावना और बुद्धि के अनुसार अपने प्रेम पात्र को देखता है और मनुष्य की तरह उससे वार्तालाप करता है।

हजरत मूसा बड़े शूरवीर और क्रोधी थे, मिश्र के राजा फरऊन को विजय करने के पश्चात् उधर के देशों में उनकी धाक जम गयी थी । यद्यपि जिन्दगी सादा और फकीराना थी, धन-दौलत, मुल्क-फौज उनके पास नहीं थे, अकेले ही सफर करते और अकेले ही अधर्मियों से संग्राम में जुटते थे, परन्तु तो भी उनके नाम का डंका बज रहा था, लोग उनसे भयभीत रहते थे । अपने इष्टदेव के प्रति ऐसे मूर्खतापूर्ण शब्द उनसे सहन नहीं हो सके, उन्होंने समझा यह मेरे खुदा की बेइज्जती कर रहा है, उसे अपने से भी छोटा और असमर्थ समझ रहा है, कड़क के बोले—'ओ हरामजादे ! क्या बक रहा है कहीं खुदा को जाड़ा लगता है, कहीं उसे भूख सताती है, क्या उसे तेरी मदद की जरूरत है ? वह तो सारे विश्व का मालिक है, सबको रोजी देता है, सबका पालन-पोषण करता है। खबरदार आइन्दा ऐसी हरकत की तो मैं तुझे जान से मार डालूँगा ।'

गड़रिये के कानों में यह शब्द पहुँचे, उसे

चेतना आई, समाधि भंग हो गयी, मस्ती उतर गयी, होश आया, देखा-हजरत मूसा क्रोध में भरे सम्मुख खड़े हैं । भयभीत हो गया, डर से काँपने लगा, पास ही पहाड़ियों का सिलसिला था वह बड़ी तेजी से उठके भागा और एक अन्धेरी गुफा में जा छिपा । मूसा अपने स्थान पर आये हाथ-पाँव धोके नमाज पढ़ने लगे । आकाश वाणी हुई-'मूसा तैने बहुत बुरा किया, जो मेरे प्रेमी को मुझसे जुदा किया । गड़रिये के वह प्रेम भरे शब्द मुझे बहुत अच्छे लग रहे थे। मूसा मैं भाव का भूखा हूँ, प्रेम से मुझे कोई गालियाँ भी बकता हो तो मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं, कर्म-काण्ड दूसरी चीज है इसमें नियम चलता है, प्रेम में कोई नियम नहीं होता, वहाँ मान-अपमान रहता ही नहीं । प्रेमी को इतना होश कहाँ होता है जो ऊँच-नीच का विचार करे। उसकी मन-बुद्धि और इन्द्रियाँ अपना सारा व्यापार त्याग एकदम मेरी ओर ही खिंच जाती हैं, प्रेम की मस्ती में सुधि-बुधि सब बिसर जाती है । वह सब ओर मुझे ही देखता है, मुझे ही आलिंगन करने को दौड़ता है, मुझे पकड़ने को छटपटाता है, जो जी में आता है वह मुझसे बकता है । ऐसे प्रेमियों के अटपटे शब्द मुझे बड़े प्यारे लगते हैं, सदा ही उनके सुनने को उत्सुक रहता हूँ । तू कर्म-काण्डी है, प्रेम के मार्ग को क्या जाने इसलिए यह गलती तुझसे हुई है, आगे कभी ऐसा मत करना ।

नाहं बसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मदभक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

मूसा को एक नई बात मालूम हुई, अहंकार का पर्दा हटा, प्रेम के महत्व का उनको पता चला, भाग के उसी स्थान पर पहुँचे जहाँ गड़रिया बैठा अपने प्रेमी को रिझा रहा था, अपने इष्टदेव को सम्मुख देख रहा था और उनसे उलटे-सीधे शब्द कह रहा था परन्तु अब वह वहाँ कहाँ था । तालाश करने लगे, पता चला एक अंधेरी कन्दरा में छिपा बैठा है । वहाँ भी पहुँचे आवाज दी और बोले-ऐ गड़रिये डरै मत, मैं तुझे खुदा का सन्देश सुनाने आया हूँ । वह तेरे उन्हीं शब्दों से खुश था, उन्हीं को फिर खुदा के रूबरू कह, मैंने गलती की थी जो तुझे मना किया ।

गड़रिया बोला- 'मूसा ! अब मैं वह नहीं रहा, वह तो उसी वक्त की हालत थी, अब मेरी आन्तरिक स्थिति बदल चुकी है, उस क्षणिक दर्शन ने ही मेरी आँखें खोल दी हैं, मेरे अज्ञान का पर्दा हट चुका है, मेरे विचार, मेरे भाव अब पहले जैसे नहीं रहे, अब तो किसी दूसरे लोक का प्राणी बन चुका हूँ । मैं देखता हूँ कि मेरे प्यारे ने मुझे अपना लिया है, आप जाइये और मुझे मेरे चितचोर के चरणों में पड़े रहने दीजिये ।'

यह है पल मात्र की उपासना का फल । प्रभु का एक मुहूर्त का सत्संग मनुष्य के हाव-भाव और चेष्टा सभी बदल देता है । उसे इस स्थिति से उठा के एकदम कहीं दूसरी जगह ही पहुँचा देता है । उसके अन्दर शान्ति, ढ़ाढ़स और निर्भयता का संचार कर देता है । प्रसन्नता से उसका मुख खिल जाता है, शोक और अज्ञान उससे परे हट जाते हैं, मोह और ममत्व उसका संग छोड़ जाते हैं। उपासक जिस समय अपने ऊपर एक महान ईश्वरीय विभूति की छाया देखता है तो उसी समय बेफिक्री और शान्ति की गोद में खेलने लगता है । किसी से भय नहीं रहता, कोई चिन्ता नहीं सताती । प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक शक्ति, प्रत्येक विभूति उसे अपने अधिकार में ही दिखाई देती है और शिर पर एक महान् शक्तिशाली सर्वेश्वर पिता का हाथ देखता है, इसलिए उसका वह जीवन एक आनन्दमय जीवन बन जाता है। **

सम्पादकीय

प्रकृति का ऐसा नियम है कि अंश पूर्ण से ही मिलकर सन्तुष्ट होता है। समुद्र में अथाह जल ही जल है। गर्मी में समुद्र का जल भाप बनकर ऊपर उठता जाता है और आकाश में बादल का रूप धारण कर लेता है। समुद्र के जल को दूर देशों में बरसा देता है। जल कहीं भी बरसा हो लेकिन उसकी इच्छा सदैव अपने पूर्ण समुद्र से मिलने की स्वाभाविक रूप से होती है। अतः वह छोटी नाली बनता है, नाला बनता है, नदी बनता है लेकिन नदी की हर बून्द का ध्येय समुद्र से मिलना होता है। समुद्र अथाह जल का स्वामी है और बून्द एक छोटा जल का अंश। समुद्र पूर्ण है और नदी का जल अंश है अतः अंश का धर्म पूर्ण से मिलना है चाहे उसे सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा क्यों न करनी पड़े। ऐसे ही जीव भी उस परमात्मा का अंश है जो सत् है, चित् है, आनन्द है, पूर्ण है। जीव का धर्म भी उस पूर्ण परमात्मा से मिलकर पूर्णता प्राप्त करना है।

हमारे ऋषियों ने ईश्वर की प्रणव के रूप में कल्पना की है। प्रणव या ओंकार की चार स्थितियाँ लिखी हैं- अ, उ, म तथा एक अर्धमात्रा। 'अ' से संसार में धावा, 'उ' से संसार में रहना तथा 'म' से संसार से जाना (मृत्यु) लेकिन अर्धमात्रा जो प्रथम की पूर्णता कराती है इसमें हमारे कर्मों के संस्कार भर जाते हैं जो कि यात्रा के पूर्ण होने में व्यवधान प्रकट करते हैं। अतः मृत्यु के बाद इन अवरोधों के कारण हमारा मिलन पूर्ण परमात्मा से नहीं हो पाता। प्रणव की यात्रा पूरी नहीं हो पाती और मृत्यु के बाद हमारे संस्कारों के अनुसार हमें जन्म मिलता है वहां संस्कार वश पुनः कर्म करते हैं संस्कार बनते हैं। यात्रा पूरी नहीं होने के कारण जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है। यात्रा पूरी न होने के कारण जीवन में शान्ति, सन्तुष्टि व आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। कितना भी धन हो कितना ही सम्मान तथा वैभव हो लेकिन प्रणव की यात्रा पूरी न होने पर कभी भी पूर्ण शान्ति तथा आनन्द नहीं प्राप्त हो पाता। अतः क्या करें?

एक भक्त ने एक महात्मा से पूछा कि भगवान कैसे हम अपनी पूर्णता प्राप्त करें? महात्मा का कहना था कि भाई जिस मार्ग से तुम घर से यहाँ तक आये हो उसी मार्ग से घर लौटना भी है। तभी अपने घर पहुँचोगे। अतः संसार में जैसे हम आये हैं वैसे ही लौटना होगा। अब आप याद करें हम संसार में कैसे आये। शास्त्रों के अनुसार 'मैं' वही आनन्द घन परमात्मा था। उसी परमात्मा की इच्छा 'मैं' एक से अनेक हो जाऊँ के कारण उससे

अलग हुआ, प्रकृति का सम्पर्क हुआ। हिरण्यमय अवस्था हुई जहाँ अतीव आनन्द था। न कोई इच्छा, न ज्ञान, न और कुछ केवल आनन्द ही आनन्द। प्रकृति का प्रभाव बढ़ा, 'मैं' की जागृति हुई। आनन्दमय कोश से विज्ञानमय कोश में स्थिति हुई। जहाँ मुझे ज्ञान हुआ कि प्रकृति संयोग में मेरी स्थिति क्या है। और आगे बढ़ा तो मनोमय कोश जहाँ मन से सम्पर्क हुआ। आगे प्राणमय तथा अन्नमय तथा अन्त में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश स्थूल तत्वों का आवरण। प्रकृति सम्पर्क से कारण शरीर 'मैं' बना, बुद्धि में प्रकृति का ज्ञान भरा तथा मन के आने से वाह्य करण। वाह्य इन्द्रियों से कर्म तथा ज्ञान लेना प्रारम्भ हुआ और 'मैं' आत्मा जीव बन गया। प्रकृति में डूब गया। महात्मा तुलसीदास ने लिखा है-

देखिअ सुनिअ गुनिय मन माहीं।
मोह मूल परमारथ नाहीं।।

जहाँ तक देख पा रहा हूँ जहाँ तक सोच पा रहा हूँ जहाँ विचार की पहुँच है सब प्रकृति प्रकृति है। प्रकृति में ज्ञान नहीं अत: जो कुछ भी मैंने जाना है वह वास्तविक ज्ञान नहीं।

संसार की दृष्टि से हम देखें तो छोटे शिशु में अभी ज्ञान की स्फुरणा नहीं हुई है, न भाषा है लेकिन उसमें सहज प्रेम है या हम कहें दिव्य प्रेम है। परमात्मा जो आनन्दघन है उसका अंश है अत: उसमें ईश्वरीय प्रेम है। माँ में वात्सल्य प्रेम भरा है दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अत: शिशु माँ की पहचान अपने इसी प्रेम से करता है। यह प्रेम ईश्वरीय है अत: इसमें विशेष आनन्द है। इस आनन्द की पूर्ति पुत्र बड़ा होकर माँ की खूब स्तुति करे, माँ की खूब सेवा करे लेकिन वह प्रेम अलग ही है। वह आनन्द अलग ही है। माँ उसकी मासूम मुस्कराहट पर असीम आनन्द की अनुभूति करती है। सूरदास जी ने माँ यशोदा तथा भगवान कृष्ण के इसी प्रेम में लिखा है-

जसोदा हरि पालने झुलावति।
ललरावत दुलरावत जोइ सोइ कछु गावति।।

माँ यशोदा शिशु कृष्ण को पालने में झुला रही है। उसे एक टक देखती रहती है कभी दुलराती तथा प्रेम में मग्न होकर कुछ गाने लगती है। दिव्य प्रेम में खोई हुई है।

साधना मार्ग में इसी प्रेम को भक्ति कहा गया है। साधक जहाँ प्रकृति निरपेक्ष होता जाये इतना निरपेक्ष कि सारी इच्छाऐं पीछे छूटती जायें। कोई कामना नहीं रह जाये। यहाँ तक कि ज्ञान भी बहुत पीछे रह जाये, लिंग भेद समाप्त हो जाये। न भूख, न प्यास शरीर का कोई बोध नहीं। इसे शास्त्रों ने पंचम अवस्था कहा है। शिशु में यही अवस्था है, न उसे शरीर का भान, न कुछ ज्ञान है। उस भक्त के मुख मण्डल पर एक अजीब सुन्दरता, सरलता, सहजता तथा मासूमियत आ जाती है। रास्ता चलता व्यक्ति भी ऐसे व्यक्ति को देखकर एक पल को ठिठक जाता है उसकी ओर देखता रह जाता है। परमात्मा भी ऐसे भक्त के सम्पर्क में आकर उस प्रेम को पाकर कृतार्थ हो जाता है।

इस अवस्था को प्राप्त करने के अनेकों उपाय तथा साधनाऐं ऋषियों, सन्तों तथा शास्त्रों ने वर्णित की हैं। काम केवल एक ही है प्रकृति से उपरामता तथा आत्मा से सापेक्षता। यह प्रकृति मेरे मन बुद्धि तथा अहं में भरी हुई है। आवश्यक है मेरे मन, बुद्धि तथा अहं से यह प्रकृति निकल जावे। मेरा मन, मेरी बुद्धि निर्मल हो जाये। बहुत असम्भव सा कार्य है। जिस प्रकृति में मेरा जन्म हुआ है जिस प्रकृति में ही मैं सारे कार्य करता हूँ उससे अलग कैसे हूँ। एक शायर ने बहुत सुन्दर कहा है–

'या खुदा तूने ही बांध कर दरिया में डाल दिया है और कहता है बाहोश, दामन न भीगने पाये।'

हमारे गुरु महाराज ने कहा भाई साधना के द्वारा यह अवस्था प्राप्त करना सम्भव नहीं है– 'यह फल साधन ते नहि होई' बस मेरी गोद में आ जाओ। मेरा काम है तुम में श्रद्धा पैदा करना, विश्वास जगाना तथा उस परमात्मा से योग कराना तथा उससे भी आगे तुम्हारे अन्दर दिव्य प्रेम भरना, भक्ति उत्पन्न करना जैसे एक माँ की गोद में बैठा शिशु। माँ उसे गोद में ही ले जाकर गंगा स्नान करा देती है। ऐसे ही मैं भी तुम्हें वहीं पहुँचा दूँगा जहाँ अच्छे-अच्छे योगी नहीं पहुँच पाते। करना क्या है- केवल सत्संग? बस मेरे सामने बैठते रहो। गुरु महाराज से प्रार्थना है सभी पर दया करें। **

अमृत वचन

- सद्‌गुरु का ध्यान हर वक्त हृदय में रक्खो, क्योंकि उनके हृदय कमल में ही श्री भगवान का निवास है।
- अपने किसी भी कष्ट को अन्य लोगों से न कहो बल्कि अपने परमपिता परमात्मा से कहो क्योंकि तुम्हारे दु:ख को जितनी जल्दी भगवान दूर कर सकते हैं, मनुष्य किसी प्रकार भी दूर नहीं कर सकता। हमारे सच्चे हितैषी श्री नारायण ही हैं।
- सच्चा भक्त वही है, जिसको जितना वैभव, धन, सम्पदा, ऐश्वर्य मिलता जाये, उतना ही वह नम्र और विनीत होकर, ईश्वर की ओर बढ़ता जाये। जितना उसे सुख मिले, उतना ही वह भगवान का ध्यान करता जाय।
- साधक की जब गुरु से अधिक प्रीति हो जाती है तो वह बिना कुछ सोचे समझे उसके पीछे चलता है, यही भक्ति मार्ग कहा जाता है। भक्ति प्रेम को ही कहते हैं।
- भक्ति से ही हृदय आनन्द स्वरूप भगवान को प्राप्त कर कृत-कृत्य होता है।

– परम भागवत परम संत पं. मिहीलाल जी

प्रवचन पराग

विवेक दीप

— परम भागवत परम संत पं. मिहीलाल जी

यह सारा संसार मन-मुख है अर्थात् मन की करता है और वह एक कहावत भी जो मौके पर कह लेता है कि— "सुने सबकी और करै मन की" फिर आगे कुछ बात चलती ही नहीं । जैसे एक परनाले पर पंचायत जोड़ी गई, उससे हटाने को कहा गया, उसने जबाब दिया—"पंचों की बात सर माथे लेकिन परनाला तो यहीं पड़ेगा।" इन सब बातों का सार यही है कि हम जो कुछ कहते हैं अपने मन का सुझाव कहते हैं । मन के विपरीत हम जाना ही नहीं चाहते । लेकिन जब तक हम में यह बात है साधना में सफल नहीं हो सकते । साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए हमें गुरु-मुख बनना चाहिए, अर्थात् जो गुरु कहे वही करना चाहिये ।

एक साधक जो बड़े उच्च विचार के थे, मन की शक्तियाँ जो बड़ी प्रबल होती हैं, उन्होंने उन पर कुछ अधिकार भी प्राप्त कर लिया था, इस दशा में उन्होंने अपने को सिद्ध समझ लिया और सैकड़ों अपने शिष्य भी बना लिये । मन-प्रतिष्ठा पूरी हो चुकी थी । मन ने एक छलाँग और मारी और अपने शिष्यों से यह प्रश्न किया—यदि आप में से कोई मेरे इस आश्रम को संभाल ले, मेरे बाल बच्चों की देख रेख कर ले तो मैं सन्यास ले लूँ ?

यह भावना उनकी अच्छी थी, संसार से वैराग्य था । वह इसे छोड़कर ईश्वर से मिलना चाहते थे। उनके प्रश्न को सुनकर सब बड़े असमंजस में पड़ गये । गुरु जी सन्यास लेते हैं, यह एक खबर तेजी से सब में फैल गई । लोग प्रार्थना करने लगे—आप मेरी नाव के खेवैया हैं, आप तो वैसे ही पूर्ण हैं । आपको सन्यास की क्या आवश्यकता है ? आपका जीवन तो जल में कमल के समान है, देखने को आप गृहस्थ हैं वास्तव में आप तो पूर्ण विरागी हैं। गुरु का हृदय पिघला और आगे कुछ निर्णय न कर सके । उनके शिष्यों का जो कर्त्तव्य था पूरा किया । उन्होंने और कोई उत्तर नहीं दिया ।

मन एक विशेष शक्ति है जिससे जीवात्मा अपनी रचना का सारा काम लेता है । जब जीवात्मा गुरु के बताये हुए मार्ग से ऊर्ध्वगामी बनता है और अपने निज स्वरूप में जाना चाहता है तो मन साथ को छोड़ देता है लेकिन कभी-कभी रुकावट भी डाला करता है, परन्तु जब साधक इसकी परवाह नहीं करता, तो फिर यह सहायक भी बन जाता है। बहुत से साधक जिनका कोई सद्गुरु नहीं होता, किताबों को पढ़कर या सुन-सुना के साधना प्रारम्भ कर देते हैं। वह बराबर इसी प्रकार आगे चलते रहते हैं और मन उन्हें ऐसे ही घुमाया करता है । मुख्य बात यह है कि उनका ईश्वर पर पूर्ण विश्वास नहीं । यदि विश्वास हो तो बच्चों की देख रेख, अपने आश्रम को यथाविधि रखना, इन बातों की क्या चिन्ता है? यदि आज हम मर जायँ तो हमारे बच्चों को कौन देखेगा, क्या संसार में ऐसे लाखों आश्रम आज तक बन कर नहीं बिगड़े ? क्या यह ममत्व नहीं है कि मेरे पीछे मेरा मिशन ऐसे ही चलता रहे ?

''यह सब इसी प्रकार है कि हाय मैं मर रहा हूँ, आज से इन अनाथ बच्चों को कौन पालेगा ?''

''कौन मेरे इस बाग बगीचा और सम्पत्ति की देखभाल करेगा, बरबाद न हो जाय?''

''देखो बेटे, मेरे पीछे मेरी बात न बिगड़ने देना।''

यह सारी बसीयत (उपदेश) मरते समय वही करता है जिसका भगवान पर विश्वास नहीं, जो सारी कमाई अपनी जानता है । हमारे गुरु महाराज ने कभी यह नहीं कहा कि यह सत्संग मेरा है । यह बिगड़ने न पाये । वह बराबर कहते थे कि सत्संग गुरु महाराज का है, वह जैसा चाहेंगे, जो हमें आज्ञा है, हम कर रहे हैं ।

जिनका ईश्वर पर अटूट विश्वास होता है वह कल की चिन्ता नहीं करते । स्वामी रामतीर्थ को जब प्रभु का वियोग असहनीय हो गया, गृहस्थी का जीवन कारावास की बेड़ियाँ बन गया, तो तोड़कर भागने की इच्छा की । किसी से सलाह नहीं ली, किसी से कहा तक नहीं । बस कपड़े उतार सारा सामान ज्यों का त्यों छोड़ जाने की तैयारी करने लगे । स्त्री ने देखा आज बात कुछ विशेष है । कुछ दिनों से यह बोलते नहीं, रातों रात जागते रहते हैं । मालूम होता है भागने की फिक्र में हैं । पूछा स्वामी आज क्या इरादा है ? कहा– मैं इस गृहस्थ जीवन से ऊब गया हूँ सन्यास लूंगा । क्या आप उन वचनों को भूल गये कि मैं तुम्हें कभी त्यागूँगा नहीं ? हाँ! याद है यदि तुम चलना चाहती हो तो चलो परन्तु....''परन्तु क्या, आप जो कहें मैं करने को तैयार हूँ । बोले–इस धन, जेवर, बच्चों का क्या करोगी ? यह सारा सामान और बच्चे अपने पिता के पास भेजे देती हूँ ।

बोले–नहीं, तो मैं साथ नहीं लूँगा ।

तो फिर बताइये क्या किया जाय ?

सारे जेवर, रुपयों को बाँट दो, बच्चों को बाजार में छोड़ दो । स्त्री ने सारा जेवर, गहना बाँट दिया, रुपये जिसने माँगे उसे दे दिये । दो बड़े बच्चों को बाजार भेज दिया, छोटे बच्चे को गोद में ले लिया । कहा–चलिये । बोले–अभी नहीं इस बच्चे को भी चौराहे पर छोड़ आओ, नहीं तो तुम घर रहो । मेरे साथ नहीं चल सकती ।

स्त्री का हृदय भर आया, वह उसको भी लेकर गई और बज्र की छाती कर बच्चे को छोड़कर आ गयी । कहा– चलिए अब मैं तैयार हूँ । बोले एक बात और है, उसे भी पूरा करो । वह यह है कि अपने मुख से तीन बार कहो कि–रामतीर्थ मर गया, रामतीर्थ मर गया, रामतीर्थ मर गया ।

पत्नि ने कहा महाराज आपने जो कहा वह पूरा किया । लेकिन यह कैसे हो सकता है कि जो सर्वस्व है, जिसके पीछे सभी त्यागा है, उससे ऐसा कहा जाय । क्षमा कीजियेगा, यह न कहलावाइये। रामतीर्थ ने कहा-ऐसा नहीं हो सकता तब तो घर पर ही रहना होगा । पत्नि लाचार हुई और अपने पति के प्रति ऐसा शब्द तीन बार कहना पड़ा, ऐसा कर देने पर उसे साथ ले लिया ।

इस सारी कथा का सारांश यह है कि हम चाहे गृहस्थी में रहें, चाहे विरक्ति में, हर दशा में भगवान पर विश्वास करें, ममता और संग्रह का मन से त्याग करें । गुरु को ईश्वर रूप समझ उनकी आज्ञाओं का पालन करें । तब मन का दमन हो सकता है । मन ज्यों-ज्यों गुरु की आज्ञा से भिंचता है, दुःखी होता है, उसी प्रकार उसका बल कम होता जाता है। फिर धीरे-धीरे वह ईश्वर की आज्ञा भी समझने लगता है जिस पर चलने से ही उसका कल्याण है । **

सुधा-सार

गुरु प्रणिधान

नवनीत हृदय परम संत श्री डा0 बृजेन्द्र कुमार जी

जीवन मुक्त, मोक्ष-पुरुष, त्रिगुणातीत आदि शब्द पर्यायवाची शब्द हैं व उनके लिए इस्तेमाल हैं जिन्होंने इसी जीवन में मनुष्य जीवन का असली ध्येय प्राप्त कर लिया।

प्रकृति के तीन गुण बताये जाते हैं- सत्, रज, तम। इन तीनों से परे पहुँचने वाले को त्रिगुणातीत कहते हैं। वैसे तो जब तक जीवन है, ये तीनों गुण शरीर में विद्यमान रहते हैं। जिनमें सत् प्रधान हो जाता है, पुनः जिनका इन पर अधिकार हो जाता है जो इसी जीवन में इन तीनों गुणों से परे की अवस्था का अनुभव कर लेते हैं वही त्रिगुणातीत कहलाते हैं।

प्रश्न यह है कि यह अवस्था कैसे प्राप्त हो। सांख्यदर्शन तो यह बतलाता है कि जड़ चेतन की ग्रन्थि-सम्पर्क या सम्बन्ध-के कारण तुम इन तीनों गुणों में फँसे हो। इस ग्रन्थि को किसी प्रकार तोड़ डालो या खोल दो तो तुम त्रिगुणातीत अवस्था में पहुँच जावोगे।

योग दर्शन में महर्षि पतंजलि दूसरी तरह समझाते हैं। उनका कहना है कि इस प्रकृति के तीनों गुण-सत्, रज, तम के कारण मनुष्य तीन अवस्थाओं में विचरता है-

(1) क्षिप्त (2) मूढ़ (3) विक्षिप्त इन अवस्थाओं में रज या तम प्रधान रहता है।

(1) क्षिप्त अवस्था में रजोगुण प्रधान रहता है, मन विषयों या सांसारिक इच्छाओं में लिप्त रहता है व चंचल बना रहता है।

(2) मूढ़-यह तमोगुण प्रधान अवस्था है। इसमें प्रमाद व आलस्य का गलबा (आधिपत्य) रहता है।

(3) विक्षिप्त-अवस्था में रजोगुण व सतोगुण का मिश्रण रहता है, इसलिए सांसारिक विषयों के साथ-साथ ईश्वर प्राप्ति की भी इच्छा कभी-कभी जागृत होने लगती है। वह त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त करने के बारे में उत्सुक या इच्छा रखने लगता है। इसके उपाय या साधन की भी खोज करने लगता है।

जब वह त्रिगुणातीत बनने की साधना में लगता है तो पहले उसको तीन अवस्थाओं से गुजरना होता है। यह साधन की तीन अवस्थायें हैं- (1) एकाग्रता (2) निरोधावस्था (3) समाधि।

पहली दो सत् प्रधान हैं। सत में ठहराव है, इसलिए मन की चंचलता दूर होकर स्थिरता आने लगती है। धीरे-धीरे वह समाधि की अवस्था को प्राप्त होता है जहाँ वह तीनों गुणों से परे की अवस्था का अनुभव करता है। जो अनुभव की चीज है, वह कहने में नहीं आती।

त्रिगुणातीत अवस्था को प्राप्त करने के लिए महर्षि पतंजलि ने जो योग-साधना का वर्णन किया है, उसके आठ अंग हैं। इसलिए उसको

अष्टांग योग कहते हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। साधक के लिए अष्टांगयोग के सभी अंगों का पालन करना आवश्यक है, पर इनमें दो मुख्य हैं। अगर इसको कर लिये तो और सब आसानी से हो जाते हैं। ये हैं-

(1) ईश्वर प्रणिधान-ईश्वर पर पूर्ण विश्वास के साथ उसी के सहारे अपने को छोड़ देना यानी ईश्वर समर्पण कह सकते हैं।

(2) ध्यान-मन और चित्त को एक विषय पर ठहराने का प्रयास धारणा कहलाती है। जब चित्त निश्चल होकर एक स्थान पर ठहर जाता है अथवा स्थिर हो जाता है तो ध्यान की अवस्था कहलाती है। आगे चलकर यह निरोध की अवस्था में जाता है। धारणा व ध्यान के लिए बहुत से विकल्प बताये गये हैं।

सन्त मत में सब विषय एक ही में समाहित कर दिये गये हैं यानी ''गुरु प्रणिधान'', गुरु पर ही धारणा व ध्यान करना।

**

आलोक किरणें

- शिक्षक में तीन बातें होना लाजिमी हैं—मार्ग का पूरा अनुभव हो, शक्तियों के परिवर्तन करने की सामर्थ्य रखता हो और सम्मुख आये हुए जिज्ञासु को फौरन जाँच ले कि यह जीवन में अथवा पूर्व जन्मों में इस स्थान तक चढ़ाई कर चुका है, अब आगे का रास्ता उसका खोलना है । जब तक यह योग्यता नहीं हो जाती तब तक वह गुरु पद के योग्य नहीं समझा जाता और न उसके द्वारा दूसरों को पूर्ण लाभ पहुँच सकता है ।
- ज्ञान तीन तरह का होता है— (1) प्रमाण (2) विपर्यम (3) विकल्प । वस्तु के असली रूप का जैसा का तैसा ज्ञान हो जाना प्रमाण कहलाता है । चीज है तो कुछ और परन्तु हम उसे दूसरे ही रूप से देख रहे हैं जैसे एक लकड़ी का ठूँठ खड़ा है पर हमको भ्रम से वह मनुष्य जान पड़ता है, यह ऐसा झूठा ज्ञान विपर्यम बोला जाता है । तीसरा विकल्प ज्ञान वह है कि जहाँ वस्तु का वजूद अस्तित्व ही विल्कुल न हो मगर हमको वहाँ चीज दिखाई दे और समझ में आवे कि यह अमुक वस्तु है, ऐसा झूठा ज्ञान 'विकल्प' कहा जाता है ।
- लोक परलोक की वासनायें ही बन्धन हैं। इच्छाओं को त्याग के उनसे दूर जा खड़ा होना ही ''मुक्ति वा मोक्ष'' है। आत्मदृष्टि मिलने पर कोई इच्छा नहीं रहती अपना पराया सुख दुःख से कोई सरोकार ही नहीं रहता सब अपने ही रूप जान पड़ने से राग-द्वेष जाते रहते हैं। इसी का नाम 'जीवन मुक्त' अवस्था है।

— पूज्य गुरुदेव

सत्संग एक धारा है

— सन्त श्री ओम प्रकाश 'विरल'

ऐसा देखा गया है कि मनुष्य से जब कोई चर्चा ईश्वर भजन की की जाती है, तो या तो वह उसे अनावश्यक समझ सुनना नहीं चाहता अथवा उसकी कठिनाइयों से घबराकर दूर भागने लगता है । उसे यह पता नहीं है कि जिस महा समुद्र (ईश्वर) का वह बिन्दु (ईश्वर अंश जीव) है, उस महासमुद्र में मिले वगैर शान्ति नहीं पा सकता, आनन्द नहीं ले सकता । जैसे बूंद चाहे सुन्दर से सुन्दर स्थान पर जा गिरे, जब तक अपने भण्डार में नहीं मिल जाती, आनन्द की लहरें नहीं ले पाती । कुछ बूंदें तो ऐसी होती हैं जो किसी नद, नाले में पड़कर नदी तक पहुँच जाती हैं, जो समुद्र की ओर दौड़ रही हैं । परन्तु कुछ बूँदे ऐसी भी होती हैं जो ऐसे गढ्ढ़ों में जा गिरती हैं जहाँ से उन्हें उभरने का रास्ता नहीं मिलता और वहीं छटपटाती रहती हैं तो समुद्र उन्हें अपने पास बुलाने की योजना बनाता है । उन बूँदों के विरह से जब वह तपता है तो मेघ का स्वरूप धारण कर ऐसे स्थानों पर छा जाता है, जहाँ पर सूख रही बूँदे उसकी परिधि में आ जाती हैं । फिर जब घनघोर वर्षा होती है तो वे सारी बूँदे एक धारा का रूप लेकर किसी ऐसी नदी में जा मिलती हैं जो समुद्र से मिलने जा रही होती है। वास्तव में वह नदी ही उन बूँदों को समुद्र से मिलाने वाली एक कड़ी है । गंगा तथा अन्य नदियों का इसीलिए इतना महत्व माना जाता है कि वे जिस प्रदेश से गुजरती हैं उसको हरा-भरा करती हुईं किनारे के वृक्षों को सींचती हुईं, शीतलता और आनन्द प्रदान करती हुईं, वायु मण्डल को शुद्ध करती हुईं अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती चली जाती हैं । वह रुकती नहीं, पीछे मुड़ती नहीं, बाधाओं को चीरती हुई मिलन केन्द्र की ओर चलती ही जाती हैं । सन्त गंगा की ऐसी ही पतित-पावन धारा हैं जो अनन्त बूँदों को साथ लिए हुए महासमुद्र (ईश्वर) की ओर चले जा रहे हैं। जो उनमें मिला रहता है वह आगे चलता रहता है और एक दिन ईश्वर में जा मिलता है ।

आपने देखा है—धारा किसी घाट पर भी रुकती नहीं, तट के मंदिरों का दर्शन करती हुई, सुहावने दृश्यों को देखती हुई, बढ़ती ही जाती है, ऐसे ही सन्तों का निर्मल जीवन-चरित्र होता है ।

हम सब भी एक ऐसी ही धारा में पड़े हुए हैं, वही सत्संग है । हमारा सत्संग एक ऐसी बहती हुई धारा है जो आदि पुरुष के चरणों से निकल कर जन कल्याण के लिए भूतल पर अवतरित हुई । जो इसे भूतल पर लाये उन्हें तो सभी जानते हैं, उन परम गुरु को प्रणाम करते ही हैं । एक आशीर्वाद विशेष उन्होंने दे रखा है कि जब तक यह धारा

बहती रहेगी, लोक कल्याण होता रहेगा । यह धारा लोक कल्याण करते समय कोई भी स्वरूप धारण कर लेगी, यही स्वरूप जीवों को अपने में समेट कर फिर धारा में डाल देगा और स्वयं धारा में विलीन हो जायगा । इस प्रकार लोक कल्याण का यह क्रम बराबर बना रहेगा जब तक कि विश्व को शान्ति प्राप्त न हो जाये । उनका कहना था कि—यह सत्संग एक ऐसा छायादार वट-वृक्ष बनेगा जिसके नीचे सब धर्मों के लोग शान्ति प्राप्त करेंगे । उनकी वाणी भी है—ईश्वर एक शक्ति है—एक पावर है । जिसने उसका जो नाम रख लिया वही ठीक है । हम किसी नाम से चलें, किसी रूप से चलें, उस धारा में मिलें । यही अभीष्ट है ।

**

मेरे आराध्य

— श्री 'चमन'

मेरी धारणा तुम्ही हो, आराधना तुम्हीं हो ।
गुरु देव प्राण प्यारे, मेरी साधना तुम्ही हो ।।
साँसों में भी तुम्ही और, आँहों में भी तुम्ही हो ।
नीदों में तुम हो गुरुवर, सपनो में भी तुम्ही हो ।।
सुर में तुम्ही हो मेरे, रागों में भी तुम्ही हो ।
हैं बोल ये हमारे, आवाज में तुम्ही हो ।।
सुख में मेरे हो गुरुवर, दु:ख में भी तो तुम्ही हो ।
पूजा मेरी तुम्ही हो, और बन्दना तुम्ही हो ।।
मझधार में फँसा हूँ, दिखता नहीं किनारा ।
नैया तुम्ही हो मेरी, पतवार भी तुम्ही हो ।।
मेरे देवता तुम्ही हो, मालिक तुम्ही हो मेरे ।
मकसद तुम्ही हो मेरे, मँजिल मेरी तुम्ही हो ।।
है! प्रार्थना प्रभू बस, चरणों में ये तुम्हारे ।
कुछ और ना दिखे अब, सब ओर तुम ही तुम हो।।

**

वीतद्वेष

— संत श्री ललित प्रभ जी

प्रसन्न रहो, हर हाल में खुश रहो । प्रसन्नता आपके सौन्दर्य को द्विगुणित करती है । आप प्रेम में वात्सल्य में जीकर तो देखें । जितने आप जवानी में सुन्दर हैं उससे भी अधिक बुढ़ापे में सुन्दर दिखाई देंगे । क्या आपने गाँधीजी का जवानी और बुढ़ापे का चित्र देखा है ? तीस वर्ष की आयु में वे जैसे दिखते थे, सत्तर वर्ष की आयु में उससे कहीं अधिक सुन्दर दिखने लगे थे । जैसे-जैसे व्यक्ति के विचार सुन्दर होते जाते हैं उसका भीतरी सौन्दर्य चेहरे पर प्रकट होने लगता है । महावीर तो निर्वस्त्र रहते थे-हवा, धूप, पानी में भी । फिर भी उनका सौन्दर्य अप्रतिम था । आपने महर्षि अरविंद का वृद्धावस्था का चित्र देखा है? उनके चेहरे का ओज, तेज और सौन्दर्य कितना अधिक आकर्षक था? बुढ़ापे में उसी का चेहरा बदसूरत होता है जिसके विचार सुन्दर नहीं होते । जिसकी विचारदशा सुन्दर होती है, वह जैसे-जैसे बूढ़ा होता है, उसके चेहरे पर सौन्दर्य छलछलाने लगता है ।

किसी के कल्याण के लिये अपनी ओर से जो कुछ भी हो सके, कर दो । अगर नहीं कर सको तो सहज रहो, अपने मन को हमेशा निर्मल रखो । मैंने सुना है-अमेरिका में एक भिखारी था । जब वह मर गया तो पुलिस उसके शव को अन्त्येष्टि के लिये उठाने आई । वह सड़क के किनारे ही रहता था, अत: उसका सामान भी वहीं पड़ा था । पुलिस ने वहाँ दो थैले देखे । उनमें फटे-पुराने कपड़े थे और थी बैंक की एक पासबुक और एक चैकबुक। पासबुक में देखा तो पाया कि उसके नाम से बैंक में साढ़े तीन लाख डॉलर जमा थे और चेक बुक को टटोला तो उसमें एक ब्लैंक चेक पर साइन किए गए थे । चेकबुक पर एक नोट लिखा हुआ था कि मैंने भीख माँग-माँगकर ये पैसे जमा किए हैं, इनका उपयोग मेरे मरने के बाद, मुझ जैसे ही मांगने वाले लोगों के कल्याण के लिए किया जाए । जब मैंने इस घटना के बारे में जाना तो मेरे दिल ने कहा-

किसी को भी हो न सका उसके कद का अंदाज,
वो आसमां था, पर सर झुका के जीवन भर बैठा रहा ।

आप इतने महान भले ही न बन सकें पर इतनी विराटता जरूर दिखा सकते हैं कि अपने मन की कटुता, कलह, संघर्ष की भावना को कम करें । अगर आपके पाँव में काँटा चुभ जाए और आप चलते रहें तो वह आपको तकलीफ देता

रहेगा लेकिन उस कांटे को निकाल दिया जाए तो आपको अवश्य ही राहत मिलेगी । जिस दिन आपने उन काँटों को निकाल दिया तो मान लीजिए उस दिन संवत्सरी हो गई, क्षमापना हो गई, पर्युषण हो गए, आप वीतद्वेष हो गए । वीतराग होना हमारे हाथ में हो या न हो पर वीतद्वेष होना तो हमारे हाथ में ही है ।

प्रतिशोध को कैसे मिटाएँ ?

प्रतिशोध मिटाने का पहला उपाय है : अपने भीतर सहनशीलता का विकास करें । याद है न, जीसस क्राइस्ट को सूली पर लटकाने में उनके ही दो शिष्यों की प्रमुख भूमिका रही । क्रॉस पर लटकाते समय उनकी अंतिम इच्छा पूछी गई तो उन्होंने उन्हीं दो शिष्यों को अपने सामने बुलाने के लिये कहा । दोनों शिष्यों को जीसस के सामने लाया गया । वे दोनों थर-थर काँप रहे थे कि पता नहीं जीसस हमें क्या दुराशीष देंगे लेकिन जीसस ने एक पात्र में दूध और जल मंगवाया और उन दोनों शिष्यों को एक चौकी पर बिठाकर उस जल से उनके पावों का प्रक्षालन किया ताकि उनके स्वयं के मन में भी उन दोनों के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना न रह जाए । उनके अंदर इतनी सहनशीलता थी कि उन्होंने वह पात्र उठाया, दोनों गुरुद्रोही शिष्यों के पाँव धोये और उन्हें अपने बालों से पोंछा । फिर कहा-हे प्रभु तू इन्हें माफ करना क्योंकि ये नहीं जानते हैं कि ये क्या कर रहे हैं? जिसके भीतर इतनी सहनशीलता होती है वह प्रतिशोध और वैर का जवाब प्रेम से देता है, काँटों का जवाब फूलों से देता है ।

हम अपने जीवन में उस सहनशीलता का विकास करें कि अगर कोई हमारे प्रति अन्याय करे तो भी हम अपने अन्तर्मन में न्याय की भावना ही रखें । दुश्मन के प्रति भी दोस्ती का भाव रखना ही सहनशीलता का विकास है ।

प्रतिशोध मिटाने का दूसरा तरीका है क्षमा का विकास । जब भी विपरीत स्थितियाँ और वातावरण निर्मित हो तब उनके प्रति अपने अन्तर्मन में क्षमा और प्रेम को जन्म दें । महावीर के कान में कीलें ठोकी गईं तो उन्होंने क्षमा को धारण किया । आपके कान में कड़वे शब्द पड़ें तो आप भी क्षमाशील बनें । एक संत के जीवन में अगर कषाय जगता है तो वह उसे साँप बनाता है और अगर साँप के जीवन में क्षमा जगती है तो वह उसे देव बना देती है । यही क्षमा, अहिंसा और प्रेम जीवन जीने की कला है ।

क्षमा-प्रेम का स्वाद अनुपम

वैर-विरोध और प्रतिशोध उसी को अच्छे लगते हैं जिसने अभी तक प्रेम और क्षमा का स्वाद नहीं चखा है । दुनिया में दो कठिन कार्य हैं-किसी से क्षमा मांगना या किसी को क्षमा करना। परन्तु ये दोनों ही कार्य आपको कठिनाईयों से मुक्ति दिलाते हैं । शुरू-शुरू में मांफी मांगना हमें जहर पीने के समान लगता है परन्तु परिणाम में अमृत हो जाता है । क्षमा मांगना यदि प्रायश्चित का सुदर व अच्छा रूप है तो क्षमा करना बड़प्पन का प्रतीक । इसमें आप न केवल मन की उलझन

शेष भाग पृष्ठ 20 पर

लहरों के आगे

— श्री लखपति सिंह

शान्ति और आनन्द प्राप्त करने के लिये हम अनेक उपाय करते हैं । लोग आनंद के लिये नौका विहार करते हैं । नदी की धारा कल-कल बहती रहती है । तरंगें उठती-गिरती रहती हैं । आप जिधर कहते हैं, नाविक नाव को उधर ही घुमाता चलता है । चारों तरफ पानी-पानी जलपक्षी और अन्य जलचर रंग-बिरंगे फूल, बागानों की हरियाली, किनारे पर बने मनोहर घाट, सुन्दर-सुन्दर भवन देखने में मनोहर लगते हैं । लोग इसका मजा लेते हैं उन दृश्यों के बीच रहकर जितना आनन्द नहीं आया, उससे कई गुना आनन्द नाव में बैठकर हिलते-डुलते उन्हें निहारने में आता है । ऐसे ही हमारा यह जीवन भी एक नौका विहार ही है । जीवात्मा इस शरीर रूपी नौका में सवार है, चतुर मन इसका खेवनहार है । हम जिधर कहते हैं, वह नाव को घुमाता चलता है । वह बड़ा चंचल और विनोदी खेवनहार है । वह नाना दृश्यों का लालच दिखाकर जीवात्मा को दूर दूर तक घुमाता चलता है । यह हमारी नौका चंचल मन के ही इशारे पर चलती रहती है और जीवात्मा दृश्यों के आनन्द में खोयी रहती है । यही हमारा आपका जीवन है । जीवात्मा इन्हीं तरंगों पर विहार करती है जीवात्मा को इसके आगे का कुछ भी ज्ञान नहीं है । इस रजोगुणी और क्षणिक आनन्द के आगे कोई शाश्वत और सात्विक आनन्द भी है. इसका उसे पता नहीं है ।

मगर इस तरंग भरे चंचल जीवन के आगे, बहुत आगे एक ऐसा भी जीवन है, जो परम शान्त है, तरंगहीन है, नाना विचारों और कामनाओं से एक दम रहित है, जहाँ ठहराव है, स्थिरता है और उसमें आनन्द ही नहीं बल्कि परमानन्द है । बस वहीं सागर की तली में प्रवेश कर जाओ, गहरे पैठो और देखो उस परमशान्त और शाश्वत आनन्द के धाम को । यह क्षेत्र आत्मा का है । वह परम शान्त है, परम चेतन है, परम आनन्द है । जीवात्मा का यही निज धाम है । उसे पहुँचना यहीं है, मगर वह अपना ठिकाना भूलकर नौकानन्द में खोयी-खोयी भटक रही है ।

जिन्होंने अपने मन को शान्त कर लिया है, जिन्होंने इस नाविक को साथ लिया है, वे अक्षय सुख के भंडार में पहुँच गये हैं । मन अत्यंत संवेदनशील होता है, उस पर क्रिया प्रतिक्रिया अतिशीघ्र होती है । संसार सागर पर तीनों गुणों की त्रिविध बयार सदा चलती रहती है और मन उसका आनन्द लेता हुआ जीवात्मा को सदा चलायमान किए रहता है । साधना हीन मन पीपल

के पत्ते की तरह इस बयार में बेवजह भी डोलता रहता है, मगर संयमित और सधे हुए मन पर इस बयार का प्रभाव जल्दी नहीं पड़ता। वह स्थिर और शान्त बना रहता है । जिन्होंने इसे पूर्ण रूप से साध लिया है, उन आत्मावान महापुरुषों पर इस बयार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । उन्हें कुछ भी कहो, कुछ भी करो, वे शान्त एकरस बने रहते हैं । उनकी स्थिति में कोई अन्तर ही नहीं आता वे हँसते-हँसते विष का प्याला गले उतार लेते हैं वे हँसते-हँसते शूली पर चढ़ जाते हैं अपनी हड्डियों तक का दान कर डालते हैं । संसार में जहाँ अनेकानेक विचारों की तरंगें और विषय भोगों के ज्वार जीवन को कितना आलोड़ित करते रहते हैं, वहाँ यह एकरसता और स्थिरता एक आश्चर्य ही है । उनका जीवन कमलपत्र के समान आसक्ति रहित होता है जिस पर सागर का जल ठहरता ही नहीं । सुरखाब पक्षी की तरह उनके पंख कभी जल से भींगते ही नहीं । वे जल में डुबकी भी लगाते हैं और पंख फैलाकर आकाश में उड़ भी जाते हैं ।

पूज्य गुरुदेव ने हमें और आपको यही कला बतलायी है कि कैसे इस जल में डुबकी भी लगायें और पंख फैलाकर उड़ भी जायें । देखने में भले ही संसारी दिखें, वेष-भूषा भले ही संत महात्मा का न हो, मगर दिल से विरागी बने रहें। संसार का भोग भी करें और परमार्थ भी सिद्ध करें । नौका बिहार भी करें, दृश्यों का आनन्द भी लें और निर्विचार होकर अपने अन्तस में पैठकर सागर की तली की परम भान्ति का अक्षय आनन्द भी उठायें । उन्होंने बतलाया कि संसार और परमार्थ को एक साथ साधकर जीवन जीना जीवन की सर्वोत्तम कला है । यही आध्यात्मिक कला है । संसार और परमार्थ में संतुलन बनाए रखना सच्चा अध्यात्म है । यही जाग्रत चैतन्य समाधि है जिसमें आदमी संसार का व्यवहार पूर्ण रूपेण निभाता हुआ जीवन का परमार्थ भी प्राप्त कर जाता है । जो लोग इस कला को जाने बिना जल में उतरते हैं, वे फँस जाते हैं, उनके पंख भींग जाते हैं और उड़ना तो दूर वे पंख फड़फड़ा भी नहीं सकते । बड़ी परवशता है । उन्हें इसका भी ज्ञान नहीं रहता कि इस भवसागर से अलग कोई और लोक भी है, कोई और खुला आकाश भी है, जहाँ पक्षी स्वतंत्र रूप से विचरण करते रहते हैं । कमल पुष्प पर बैठा हुआ भ्रमर जैसे रस पीने में मस्त रहता है और शाम होते ही पंखुड़ियाँ बन्द हो जाती हैं और वह उसी में कैद हो जाता है, यही हाल संसारी प्राणियों का है । सभी रस पीने में निमग्न हैं, उसी में लिप्त हैं, उसी में डूबे हुए हैं, कब सुबह होती है, कब शाम, उन्हें क्या पता ? बस नौकानन्द में खोये बहे जा रहे हैं ।

मगर जिन्हें सत्य का ज्ञान हो गया है, वे दूर से तमाशा देखा करते हैं क्रिया प्रतिक्रिया हीन बनकर इन झंझावातों से अपना दामन बचाकर चलते हैं । वे संसार सागर के उथल-पुथल में भी शान्त और गंभीर बने रहते हैं । वे दृष्टा बनकर निर्विकार भाव से सारा दृश्य देखा करते हैं। वे काम,

क्रोध लोभादि के चक्कर में नहीं आते, वे सदा प्रसन्न और निर्भय बने रहते हैं । साधना इसीलिये है कि मन की दिशा बदल जाय, इसका चिपचिपा स्वभाव बदल जाय । साधना इसीलिये है कि वह संसार में जीने की कला जान जाय । वह संसार का आनन्द भी ले और परमार्थ भी प्राप्त करे । उन्होंने बतलाया कि अध्यात्म संसार को छोड़ने का नाम नहीं है, अध्यात्म सिर्फ ईश्वर में आसक्त होने का नाम भी नहीं है, बल्कि इसे ज्ञानपूर्वक भोगने का नाम अध्यात्म है, संसार और परमार्थ में साम्यावस्था बनाये रखना अध्यात्म है ।

उन्होंने कहा कि तुम अपने सांसारिक कार्यों से निपटकर कुछ समय निकालकर अपने को शान्त और स्थिर बनाने का अभ्यास करो । थोड़ी देर के लिये मन को एकाग्र करके अपने अन्दर अपनी आत्मा के प्रशान्त क्षेत्र में प्रवेश करो, वहीं पर अपना आसन जमाओ, वहीं बैठने का अभ्यास करो । आन्तरिक सत्संग द्वारा वहीं पर अपनी रहनी कायम करो । तुम शान्ति के भंडार में अतिशीघ्र पहुँच जाओगे । वहाँ पहुँचने पर यह संसार भी कुछ दूसरा नहीं दिखायी देगा, यह भी परमात्मा ही दिखेगा । मगर जब तक वहाँ नहीं पहुँचोगे संसार एक झमेला दिखायी देगा, माया दिखेगा, मिथ्या मालूम होगा । इसीलिये इस साधना के सहारे आत्मा के उस प्रशान्त क्षेत्र में प्रवेश का प्रयास करो, इसका अभ्यास करो और शान्तिमय अपनी रहनी बनाओ । अपने अन्दर की शान्ति को बाहरी धक्कों से बचाते चलो, उसकी रक्षा करते चलो, ऊँची नीची बयार से बचाते चलो । साधक हो तो सधा हुआ व्यवहार करो ।

सुना है कि एक बार पूज्य गुरुदेव कहीं से सत्संग की समाप्ति के बाद वापस लौट रहे थे । उन्हें छोड़ने के लिये कुछ लोग स्टेशन तक आए । स्टेशन पर वे रिक्शे से उतरे तो भाड़ा को लेकर रिक्शेवाले से कुछ कहा सुनी हो गयी । बातें बहुत बढ़ गयीं । वह दो रुपये और अधिक मांग रहा था । गुरुदेव को यह अच्छा नहीं लगा । जब वे स्टेशन पर आये तो कहा–देखो मात्र दो रुपये के लिये कितना शोर शराबा हो गया, वातावरण कितना गरम हो गया और मन कितना अशान्त हो गया । यह अच्छी बात नहीं है, साधक के लिये तो एकदम अच्छी नहीं है तुम्हारे अन्दर जो शान्ति है, जो आनन्द है, जिसे तुमने कितने परिश्रम से अर्जित किया है, जिसकी कीमत लाखों रुपयों से भी कई गुनी अधिक है, उसे मात्र दो रुपयों के लिये गँवा देना कितनी मूर्खता है ? अरे थोड़ा घाटा भी लगे, थोड़ा अपमान भी हो जाय तो उसे बर्दास्त कर जाओ, मगर अपनी आन्तरिक शान्ति को आघात या खरोंज न लगने दो । आन्तरिक शान्ति को कायम रखना, उसे बढ़ाते रहना, और बाहरी धक्कों से बचाते रहना, साधक का पवित्र धर्म है । साधना थोड़ी देर की है, मगर उसका अभ्यास तो जीवन भर का है, व्यवहार

जीवन भर का है ।

साधना यह नहीं है कि ध्यान कर लिया हो गया। साधना यह है कि सांसारिक व्यवहारों के बीच हम अपने को कितना शान्त और स्थिर रख पाते हैं । यहाँ हमारा ध्यान करना सिद्धान्त है तो उसका अमल में लाना व्यवहार है । हमारी शूरवीरता इसी में है कि हम अपने को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कितना शान्त और स्थिर रख पाते हैं । हम अपनी शान्ति की कितनी हिफाजत कर पाते हैं । जो आत्म परायण होते हैं वे अपनी शान्ति और स्थिरता को ऐसे बचाए चलते हैं, जैसे सती साध्वी स्त्रियाँ अपनी इज्जत व अस्मत को आँचल से ढककर बचाये चलती हैं । साधक अपमान सह लेते हैं, घाटा सह लेते हैं, मगर शान्ति का चीरहरण नहीं होने देते, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी संतुलन बनाये रखते हैं । कुछ लोग उन्हें मूर्ख और बुद्धू भी समझते हैं, मगर उन्हें इसकी परवाह नहीं । महात्मा गाँधी पर सड़े अंडे फेंके गये, बार बार अपमानित किया गया, मगर वे एकरस बने हुए अपने लक्ष्य की ओर सदा बढ़ते गये। साधना एक तपस्या है और तपस्या सहनशीलता का ही नाम है । यदि शान्ति चाहते हो, आत्मा का दीदार चाहते हो तो अपने को इस तंग गलियारे से बेदाग पार होने दो इन कुश कंटकों से अपना दामन सावधानी से बचाते हुए अपने को निकल जाने दो, साधना यही है । परमार्थ जीवन यही है कि तुम दोनों का रहस्य जान जाओ, दोनों में संतुलन बना पाओ । जय गुरुदेव, दया करें ।

**

पृष्ठ 16 का शेष भाग

से मुक्त होंगे अपितु अपनी शक्ति और शान्ति में बढ़ोतरी करने में भी सफल हो जायेंगे। जब कोई व्यक्ति आपके प्रति गलती या अपराध कर देता है तो आपके मन में जलन या प्रतिशोध की भावना पैदा होती है । परिणामस्वरूप आप उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाते हैं । याद रखें क्रोध का तूफान दिमाग के दीपक की लौ को बुझा देता है ।

किसी से माफी मांगकर या किसी को माफ कर आप उसके प्रति कोई उपकार नहीं करते । अपितु स्वयं पर ही उपकार करते हैं क्योंकि आप बदले की भावना और वैर विरोध जैसे नकारात्मक भावों से मुक्त होकर शांत और प्रसन्न होते हैं ।

त्याग तभी जब त्यागा अहम् ।

प्रतिशोध को हटाने का तीसरा उपाय है- 'मैं' का समापन । अगर आपके भीतर में अहंकार का भाव है, तो कृपया उसे निकाल दें वैसे ही जैसे आप पांव में गड़े हुए कांटे को निकालते हैं । आप बुद्धत्व की राह के राही हैं और इस मार्ग पर चलने की पहली सीढ़ी ही अहंकार का त्याग है । आपने सब कुछ त्याग दिया पर अहंकार को न त्याग सके तो आपके सभी त्याग व्यर्थ हैं ।

**

ग़ज़ल

— श्री ग़ाफ़िल बरनी

कृपा करके तुम्हें गुरुदेव भण्डारे में लाए हैं
गलत-फहमी[1] में मत रहना हम अपने-आप आए हैं
नहा लो, हो रही है गुरु के ज्ञानों-प्रेम की बरखा
हुए कृतकृत्य इस बरखा में जो साधक नहाए हैं
कबूले जाएंगे सरकार के दरबार में वो ही
जो कुछ फल-फूल-पत्ते तुमने श्रद्धा से चढ़ाए हैं
किया है याद तुमको अपने-अपने ढंग से सब ने
कोई रोया है मन-मन में किसी ने गीत गाए हैं
यही है सत्य मानो या न मानो किन्तु हर सर पर
दुखों की धूप में गुरुदेव की रहमत के साए हैं
है रंगो-रूप अबदी[2] और लाफ़ानी[3] महक जिनकी
चमन में बाग़बां ने कैसे कैसे गुल खिलाए हैं
न करना काम ऐसा हर्फ़ आए[4] नाम पर गुरु के
बरतना प्रेम से सबसे वो हर दिल में समाए हैं
बहकते-झूमते फिरते हैं अब उन के नशे में हम
वो जामे-इश्क़[5] तनहाई[6] में साक़ी[7] ने पिलाए हैं
जो चाहो डाल दो झोली में गुरुवर हम फ़कीरों की
भलाई ही करेंगे आप हम ईमान लाए[8] हैं
खुला दरबार है गुरु का जो चाहो मांग लो 'ग़ाफ़िल'
ये वो दर है जहां जिसने जो मांगा है वो पाए हैं

**

1. गलत फ़हमी-भ्रम में कुछ का कुछ समझना. 2. सदा बना रहने वाला (अमर). 3. जिसका नाश न हो सके (अनश्वर). 4. लांछन लगे. 5. प्रेम के प्याले. 6. एकान्त. 7. सूफीमत में साक़ी का अर्थ है सतुगुरु. 8 ईमान लाना-हृदय की गहराइयों से विश्वास और भरोसा करना ।

संत चरित

महात्मा श्री लालदास

— श्री विश्वनाथ शर्मा

ईश्वर भक्ति, आत्म कल्याण और सामाजिक समन्वय के एक प्रबल पक्षधर महात्मा श्री लालदास जी का जन्म लगभग चार सौ वर्ष पूर्व राजस्थान के मेवात (अलवर) क्षेत्र में निर्धन मेव (मुसलमान) परिवार में हुआ था । बचपन से ही भरण-पोषण हेतु श्री लालदास समीप के वनक्षेत्र में जाकर लकड़ियाँ काटते थे और उन्हें लाकर समीप के नगर में जाकर बेच देते थे । इस प्रकार वे और उनके निर्धन माता-पिता मिलकर लकड़ियाँ बेचकर अपना जीवन यापन करते थे । किशोर अवस्था तक पहुंचने पर श्री लालदास के मननशील स्वभाव और सांसारिकता के प्रति उदासीनता के भाव जाग्रत होने लगे । समीप वनक्षेत्र में अनेक तपस्वियों-सिद्धों और जोगियों के स्थान थे जहाँ वे यदा कदा चले जाते थे और उनकी जीवन-चर्या देखते थे । नगर के मार्ग से समय-समय पर साधु-संतों के आने-जाने पर उनके दर्शन का लाभ उठाते थे और उनकी छोटी-मोटी सेवा भी कर देते थे । उनसे न केवल सत्संग की महत्ता के बारे में अपितु तत्कालीन भारतीय भूभाग में भक्ति परम्परा के अनुरूप चलाये जा रहे प्रचार-प्रसार अभियानों की सार्थकता के बारे में सुनने का अवसर प्राप्त होता रहता था। श्री लालदास के मन में भी भक्ति के प्रति आकर्षण जाग्रत होने लगा किन्तु इस इच्छा को वे अपने मन में रखकर अपने दैनिक लकड़ियां काटने-बेचने के श्रम से विमुख नहीं हुए । एक बार वे लकड़ियों के गट्ठर को लेकर बेचने जा रहे थे तो मार्ग में एक स्थानीय संत से भेंट हुई । ये संत संतमत (महात्मा श्री कबीर की परम्परा का अनुयायी) की शिक्षा का प्रचार करते थे और ''गदनतिजारेवाला'' के नाम से प्रसिद्ध थे । उन संत के सामने श्री लालदास मौन होकर खड़े हो गए । इन संत ने अपनी अंतरदृष्टि से जानलिया कि यह युवक संस्कारवान है और यदि इसे सही दिशा में लगा दिया जाए तो यह अनेक लोगों का उद्धार करेगा । परस्पर वार्तालाप करने के पश्चात जब संत को पूरा विश्वास हो गया कि यह युवक सच्चा जिज्ञासु है तो उसे सम्मुख बैठाकर एक बार में ही आत्म विद्या से पूर्ण करते हुए आशीर्वाद दिया कि ''आज से तुझे दुनिया का भय नहीं सताएगा! तुम स्वयं अच्छा बनो और सभी को अच्छा बनाओ ।'' इस प्रकार संत से दीक्षा लेने के पश्चात श्री लालदास को पुनः उनके दर्शन करने की सूचना नहीं मिलती है और साथ ही श्री लालदास उस लकड़ी के गट्ठर को बेचकर अपने घर नहीं लौटे बल्कि एक अन्य गांव में जाकर रहने लगे । उस गांव के किनारे एक झोंपड़ी में

रहकर मेहनत-मजदूरी करके पैसा कमाते और उससे स्वयं का भोजन प्रबंध तथा उनके यहाँ आने वाले सभी साधुओं अतिथियों की सेवा प्रेमपूर्वक करने लगे । सेवा भाव, सत्य व्यवहार और निहंकारिता उनमें पूरी तरह से रचा बसा था । मेवात क्षेत्र में स्थानीय समाज हिंदू और मुसलमान धर्म से विभाजित था। वहाँ दैनिक जीवन में चोरी करना, परस्पर बुरा सोचना और बुरा करना, ब्याज लेना, बनावटीपन और आडंबरपूर्ण जीवनशैली जैसे दुर्गुण प्रभावित करने लगे थे । श्रीलालदास ने हिंदू और मुसलमानों को समानरूप से भगवद् प्रेम का मंत्र दिया और व्यक्त किया कि ''ज़ीवमात्र एक ही ईश्वर का अंश है और उनमें परस्पर प्रेम होना वांछित है ।'' उनकी दृष्टि में कोई भी प्राणी दोषी नहीं था और नीचकर्म करने वाले को भी वे पतित नहीं समझते थे । वह घृणा न करके सभी को ईश्वर प्राप्त करने का समान अधिकारी मानते थे । दान देना और सांसारिक धन को सभी के उपयोग का समान अधिकारी समझने का पालन करते थे । इससे उनके अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक हो गई । उनके जीवन में अनेक चमत्कारों की घटनाएं हुईं किन्तु वे उनसे निर्लिप्त रहे । उनके द्वारा अध्यात्म पर आधारित नया दिशाबोध समाज को दिये जाने से कुरीतियों का सहज शमन होने लगा । उनकी शैली में सत्गुरु की प्रतिष्ठा उस अध्यात्म का मूल था यथा-

लालजी गोविंद का गुण रस भरा, पीय सके न कोय ।
पीवेगा कोई सूरमा, जाकू सतगुरु भेंटा होय।।

मुगल शहजादा (राजकुमार) दाराशिकोह श्री लालदास के सत्संग में अनेक अवसरों पर उपस्थित हुआ तथा उल्लेख मिलता है कि उसने श्रीलालदास को अपना एक गुरु माना । दाराशिकोह और श्री लालदास के परस्पर शंकासमाधान का वर्णन सम्बद्ध ग्रंथों में पाया जाता है । एक अन्य अवसर पर जब श्रीलालदास कच्छ (गुजरात) की यात्रा पर जा रहे थे तब मार्ग में उन्हें परनामी (प्रणामी) पंथ के आचार्य संत श्री प्राणनाथजी के गुरु श्री देवचंदजी उनसे मिले । अनेक दिनों तक श्रीदेवचंद ने उनका सत्संग लाभ उठाया और अपनी अनेक आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान पाया दैववश। श्री दाराशिकोह के स्थान पर उसका छोटा भाई औरंगजेब दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा । वह कट्टर मुसलमान था और जहाँ कहीं हिंदू संत संगठन की उसे सूचना मिलती थी तो वह उसे खतरा समझ कर सताने पर उतारू हो जाता था । औरंगजेब के शासनकाल में तिजारे का हाकिम श्री साहिब खाँ बहुत कट्टर था । उसे जब सूचना मिली कि एक मुसलमान फकीर श्री लालदास ने अनेक मुसलमानों को अपने संत प्रभाव से पुनः हिंदू बना लिया है और उनसे नमाज छुड़वाकर रामनाम जपने का मंत्र भी दिया है । साहिब खाँ ने श्रीलालदास को बंदी बनाकर चालीस दिनों तक कारागार में रखकर अनेक यातनाएं पहुंचाईं। श्री लालदास के प्रेममय व सत्य वाणी व्यवहार से अंततः साहिबखाँ के सैनिक भी प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गए और स्वयं श्री साहिब खाँ ने क्षमा मांगते हुए उन्हें छोड़ दिया ।

एक अन्य अवसर पर स्थानीय मुगल फौजदार ने श्री लालदास और पूरे गांव के निवासियों पर जजिया कर लगा दिया । तब श्री लालदास ने कहा कि वे मेहनत की कमाई खाते हैं और सभी आपस में मिल बैठकर खाते हैं तथा किसी ने भी कोई धन जोड़ कर नहीं रखा है । अतः जब ये सारी जीवन शैली इस्लाम की तराजू में सही तुलती है तब किस बात के लिए जजिया कर दिया जाए? साथ ही यह भी कहा कि हम जजिया कर नहीं दे सकते हैं चाहो तो सारे गांव के निवासियों को जेल में डाल दो । फौजदार घबराया कि एक साथ सभी को कारागार में बंद कर दिया तो इनके खाने के लिए पैसे का प्रबंध कहाँ से होगा ? अतः कुढ़कर उसने गांव के एकमात्र कूएं में विष घुलवा दिया। श्रीलालदास योगविद्या में निपुण थे, चाहते तो वे उस फौजदार को योग विद्या के उपयोग से इस अमानवीय कृत्य के लिए दंडित कर देते किन्तु उन्होंने क्षमाशीलता का परिचय देते हुए उस कूएं का विषाक्त जल एक पात्र में मंगवाया। उस जल का प्रसाद लगाकर स्वयं थोड़ा पीया और शेषजल पुनः उस कूएं में डलवा दिया । वह कूआं न केवल विषहीन हो गया अपितु उसका जल भी मीठा हो गया । श्री लालदास के इस प्रताप को देखकर फौजदार के सभी मुसलमान सैनिक डर गए और वहाँ से वापस चले गए ।

श्री लालदास की वाणी की सार्थकता उनके कथन से स्वतः झलकती है। यथा उपनिषद की वाणी-कि आत्मा दूर से दूर तथा पास से भी पास है उसी के अनुरूप उनका कथन है–

घर घर व्यापक रम कहा, काहू दीखे नाहिं ।
दीखने को दूर नहीं देखो ध्यान लगाहिं ।।

अपने अनुयायियों को कहा कुसंग का सर्वदा त्याग करने से साधना में वैसी सफलता मिलती है जैसा कि श्री मीराबाई ने भी कहा है–

मनुआं राम नाम रस पीजे ।
तज कुसंग बैठ सत्संग नित, हरिचर्चा सुन लीजे ।।

श्री लालदास की समानांतर प्रेरणादायी वाणी के अंश हैं–

लालाजी कुसंग बिगाड़े साध कू,
कैसा ही कुल शुद्ध ।
एक बूंद कांजी पड़े, और फाड़े सौ मन दूध ।।
लालजी कुसंग को आदर बुरो, भली संत की त्रास।
जिन घट हर हर ऊबरे, उन घट हर प्रकास ।।

श्री लालदास को न केवल हिंदुओं ने पूज्य माना अपितु मुसलमानों ने उन्हें पीर का दर्जा दिया । उनका कथन था कि–

हिंदू तुरको येक ही साहिब, दुवधा दो जग जाई ।
झूठी काया, झूठी माया, झूठी जगत की बड़ाई ।।

दाराशिकोह के द्वारा पूछे गए प्रश्नों में से कुछ प्रश्नों के उत्तर जो श्री लालदास ने दिये थे वे निम्न प्रस्तुत हैं–

प्रश्न : साधु की सम्पत्ति क्या है ?

उत्तर : गुरु में अटल विश्वास व अटूट श्रद्धा।

प्रश्न : साधु का महत्व किसमें है ?

उत्तर : सिर झुकाने और छोटा बनने में ।

प्रश्न : सबसे बड़ा पाप क्या है ?

उत्तर : दूसरों के उपकार (एहसान) का न मानना और दूसरों का दिल दुखाना ।

**

समर्पण योग

— श्री सुधांशु रंजन

संतों ने ऐसा समझाया है कि माया ईश्वर से विलग नहीं है अपितु ईश्वर की संगिनी है, उसका प्रतिबिम्ब है। अतः माया से अलग ईश्वर को ढूंढ़ना व्यर्थ है। वह तो हममें इतना समाया हुआ है, इतना रमा हुआ है, इतना ओत-प्रोत है कि यह कहना उचित होगा कि हमारा जीवन उसी से है, हमारा कोई अपना वजूद नहीं है वरन् हम उसी में हैं।

इसी चेतना को प्राप्त करना, इसी एहसास में जीवन जीना, उसी परम सत्ता को अपना सृजक, सहायक और पोषक जानना हमारे जीवन का लक्ष्य है। यही ज्ञान है, और इसी ज्ञान से मोक्ष है।

परमात्मा जो हमारे इतना करीब है, हमारे चारों ओर है, हमारे अंदर बाहर है, फिर भी हमारे अनुभव में नहीं आता, दृष्टिगोचर नहीं होता । क्यों ? आइए इसी का विस्तृत विश्लेषण करें :

शास्त्रों ने ऐसा समझाया है कि जीव, जो परमात्मा का अंश है, ईश्वर से ही अलग हुआ है। ईश्वर का अंश होने के कारण उसमें भी ईश्वर/परमात्म तत्व के सभी गुण हैं जो ईश्वर/परमात्मा में जाने जाते हैं।

''ईस्वर अंस जीव अविनासी, चेतन, अमल, सहज, सुख रासी।''

फिर भी ऐसा क्यों है कि जो उसकी मौलिक प्रकृति है, स्मृति है, जो उसका निज स्वभाव है, जो उसका सत्य स्वरूप है, उसके विपरीत स्थिति में अपने को रखता है, निर्वाह करता है।

संतों का, शास्त्रों का ऐसा मत है कि ईश्वर/परमात्मा से अलग होते ही वह माया के प्रभाव में आ जाता है और धीरे-धीरे प्रारब्ध वश उस पर नये आवरण छाने लगते हैं, नये संस्कार निर्मित होने लगते हैं और उसकी स्मृति आच्छादित होती जाती है। फलतः वह अपने निज-धाम, निज-स्वरूप और निज-स्वभाव को भूल जाता है।

''भूमि पड़त भा ढाभर पानी,
जिमि जीवहिं माया लपटानी।''

माया के क्षेत्र में आते ही जीव उसके आकर्षण में समाने लगता है, उसमें रमने लगता है और उसका फल यह होता है कि उसकी स्मृतियाँ गौण हो जाती हैं और उसके स्वभाव और चेतना में संसार बस जाता है। अपनी स्थिति में वह क्षणिक सुख प्राप्त करता है और मिथ्या आनंद में भूला रहता है। यही जीवन की जड़ता है। जीव की यही जड़ता उसकी अशांति का कारण होती है। इसी कारण से वह सांसारिक सुखों का उपभोग कर क्षणिक सुख तो प्राप्त करता है परन्तु आंतरिक प्रसन्नता और आनंद से दूर रहता है और परमात्मा से विमुख भी रहता है। वह अपनी उलझनों में रमा हुआ रहता है, त्रिविध तापों का शिकार होता है और जरा मरण के चक्र में फँसा रहता है। यही माया है। इससे बाहर वो निकले कैसे?

विज्ञान इसे "जड़ता का सिद्धांत" (Theory of Inertia) के माध्यम से समझाता है। "इसके अनुसार कोई भी वस्तु अपनी स्थिति को तब तक बनाये रखती है जब तक कि किसी वाह्य बल का प्रयोग उस पर न हो।" ठीक उसी प्रकार जीव अपने सांसारिक क्रिया कलापों में तब तक मशगूल रहता है, उसके आकर्षण और आनन्द में डूबा हुआ अपने वास्तविक ध्येय से तब तक विमुख रहता जब तक किसी संत, सद्गुरु की निगाह नहीं पड़ती। उनकी दया, उनके वात्सल्य की ठोकर से ही वह जागता है, उसकी चेतना हरकत में आती है और वह अपना मुख उधर को करता है। संत की करुणामयी दृष्टि, उनका प्रेमाकर्षण, उनकी अहैतुकी कृपा, जीव की दिशा मोड़ देती है। जो अब तक अधोमुख पड़ा था, संसार में रमा था, उसी में सुख और आनंद तलाश रहा था, जिसे अपने निज-धाम एवं निज-स्वरूप का भान ही नहीं था, अब उसकी अवस्था बदल जाती है, वह उर्ध्व-मुख हो जाता है एवं उस आकर्षण में बढ़ने का, उठने की चेष्टा प्रारम्भ करता है।

परमात्मा जो इतना विशाल है, इतना विस्तृत और विराट है, हममें इतना समाया और रमा हुआ है कि उसे देखना या जानना मानवीय दृष्टि एवं बुद्धि के दायरे से परे है। वह देखने या समझने की चीज भी नहीं है। ईश्वर तो एक शक्ति है, अनुभूति है, जिसका ज्ञान आंतरिक चेतना से ही सम्भव है।

जैसे किसी मनुष्य के लिए उसके खुद की शक्ल देखना सम्भव नहीं। उसके लिए एक दर्पण की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार उस परम पिता का दर्शन, उनका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी संत, आप्त पुरुष की आवश्यकता होती है जिनकी मेहरे नजर, करुणा से ही कोई भाग्यशाली उनके समीप पहुँच पाते हैं और परमात्म दर्शन प्राप्त कर पाते हैं

"अलख पुरुष की आरसी, साधु ही का देह।
लखा जो चाहे अलख को, इनमें ही लख लेह।।

संत का हृदय ईश्वर का निवास स्थल होता है। जब ऐसे ही किसी महान संत का हृदय द्रवित होता है, निर्बल, असहाय, अक्षम, अकर्मण्य जीव के प्रति उनकी करुणा प्रबल होती है तब वे कृपा कर, दया वश, अपने आकर्षण से स्वयं ऐसों के समक्ष आ जाते हैं, उन्हें बुला लेते हैं, उन्हें अपना लेते हैं। हम चाहे जिस किसी नाम से इन्हें जानें, पुकारें, ये ही हमारे लिए गुरु, माता, पिता, भ्राता, सखा, हितु सब कुछ होते हैं।

गुरु महाराज ने ऐसा बताया है कि तुम्हारे लिए बस इतना ही जरूरी है कि तुम मुझसे एक संबंध जोड़ लो और इसीलिए उन्होंने अपने पूरे सत्संग को एक परिवार का रूप दिया और उसमें अपना प्रेम भर दिया। आज उसी के सहारे यह सत्संग रूपी गंगा की सलिल धारा अपने निर्मल प्रवाह से प्रवाहित हो रही है और हजारों लाखों जीवों का निरंतर कल्याण करती जा रही है।

आदि काल से अनन्त प्रयास एवं प्रयोग, संतों ने इस दिशा में किये हैं। सबका निचोड़ यही सामने आया है कि इस असार संसार से, भव सागर से, माया के आवरण से, अज्ञान के दायरे से, अविद्या के प्रभाव से उपराम पाने का, बाहर निकलने का एक ही रास्ता है, किसी ऐसे महापुरुष की शरण में जाना जिन्होंने ये सारी हदें पार कर ली हों, जो स्वयं सुख-दुःखः, लाभ-हानि से परे हों, जो स्वयं प्रकाशित और प्रदीप्त हों। गीता में भी बताया है :

**''तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः।।''**

34 ।4

इन्हें ही आप्त पुरुष कहते हैं और इन्हीं की शरण में जाना हमारे प्रयासों का लक्ष्य होना चाहिए। भगवान बुद्ध ने भी इसी के लिए इंगित किया है:

**''बुद्धम् शरणम् गच्छामि।
संघम् शरणम् गच्छामि।।''**

वैसे तो यह हम जैसे अक्षम, अकर्मण्य, अज्ञानी, अधम प्राणियों के लिए, जो इस सांसारिक आकर्षण में, लोभ-मोह और अज्ञानता के घोर दलदल में पूरी तरह फँसे हैं, बहुत कठिन है, परन्तु जब उस करुणानिधान, दीनबंधु, दीन दयाल की दया उमड़ती है तो वे स्वयं अपनी शक्ति, दया, करुणा एवं प्रेम से हमें अपनी ओर खींच लेते हैं।

इधर को हमारी दृष्टि हुई और उनकी करुणा धार शक्ति जो सतत सर्वकल्याण हेतु प्रवाहित हो रही है, हमें अपने प्रभाव में ले लेती है। इसका फल यह होता है कि उनका आकर्षण, उनका वात्सल्य प्रेम, उसका अनुभव, उसका ज्ञान हमारी चेतना को हरकत में ला देता है। हम जो अपने आधार से, अपने आदि स्रोत से विमुख होने के कारण निराधार पड़े थे, स्मृति विहीन अंधकार में पड़े थे सहसा रोशनी का अनुभव करने लगते हैं। हमारे अंदर एक स्फुरणा, एक गति प्राप्त हो जाती है। यही एहसास एवं गुरु से संचालित धार, उनका आकर्षण, उनकी अहैतुकी कृपा हमें उनके निकट से निकटतर पहुँचाती है।

जीव जब इस प्रभाव में, गुरु के चेतन प्रकाश में थोड़ा ठहरता है, रमता है तो उसकी स्मृति पुनः जागृत हो जाती है, उसकी जिज्ञासा फिर से क्रियाशील हो जाती है और वह अपने को इसी प्रभाव में रखना चाहता है।

गुरु के समीप होने का, उनके आलोक में आने का प्रभाव यह होता है कि उसके अंदर आंतरिक प्रसन्नता उत्पन्न होती है और सांसारिक सारे सुखों के बावजूद जिस शांति की उसे कमी महसूस होती थी, उसकी खुराक उसे धीरे-धीरे मिलने लगती है। वह अपने को स्थिर और प्रसन्न अनुभव करने लगता है।

जैसे-जैसे उसका समीपत्व गुरु से बढ़ने लगता है, उनके दिव्य आलोक में, उनके करुणामयी, कल्याणकारी प्रभाव में वह अवगाहन करने लगता है, अपने मुरशिद से उसका संबंध प्रगाढ़ होने लगता है। उसका फल यह होता है कि उसके अंदर के विकार जो उसकी चेतना, मन, बुद्धि एवं स्मृति को पूर्णतः आच्छादित कर रखे थे अब धीरे-धीरे हटने लगते हैं । उसका मन निर्मल होने लगता है, बुद्धि साफ एवं प्रखर होने लगती है तथा चित्त शांत होने लगता है। उसकी श्रद्धा बलवती होती है और गुरु में आस्था एवं विश्वास स्थायी होता जाता है। धीरे-धीरे उसका निर्माण अपने पीर, अपने गुरु, मुर्शिद के अनुरूप होता चला जाता है और वह अपने को निर्भय, निश्चेष्ट और निरहंकार रूप में परिवर्तित पाता है।

यह उस महान पुरुष की अहैतुकी कृपा, उनकी शक्ति, करुणा एवं हृदय गंगा से प्रवाहित प्रबल प्रेम का प्रतिफल होता है।

कैसे यह अप्रत्यक्ष प्रवाह उसके अंदर ऐसा निर्मित कर देता है जो उसके बिना किसी प्रयास के अब प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगता है। अब उसके अंदर एक संबल प्राप्त हो जाता है जो उसके मौलिक आंतरिक स्वरूप को विकार मुक्त करता

हुआ उसे आगे बढ़ाता जाता है। अब उसे अपने पीर, मुर्शिद/ गुरु में अपने निज स्वरूप का भान होने लगता है।

जीव की स्थिति, गुरु की दया से, शक्ति से, निकटता से फिर आगे बढ़ती है और जब वह आंतरिक रूप से पूर्णतः परिवर्तित हो जाता है, अंदर की संरचना पूर्णतः साफ हो जाती है, जब गुरु उस पर इतना रीझ जाते हैं, उनका वात्सल्य, उनकी करुणा, जब जीव के लिए उमड़ पड़ती है तब वह महाशक्ति, वह परम सत्ता, वह परम कृपालु, वह दीन दयाल स्वयं करुणावश अपने वास्तविक स्वरूप का विराट दर्शन उसे अधिकारी समझ उसके सामने प्रत्यक्ष कर देते हैं यही वह स्थिति होती है जब जीव अपनी निज सत्ता को उस परम सत्ता में समाया हुआ, उसी से सृजित, पोषित, प्रवाहित और संचालित अनुभव करता है। तब उसे यह ज्ञान होता है कि उसका न कोई अपना वजूद है, न ज्ञान है, न शक्ति है और न क्षमता है।

उसकी सारी आकांक्षाएँ, अशान्ति, अहंकार, अस्थिरता गौण हो जाती है। वह निर्भय और निश्चेष्ट हो जाता है, एक महा शून्य में अपने को स्थित पाता है। यही अमोघ दर्शन है और इसी स्थिति में शिष्य का, जीव का सारा आपा, उस महा शक्ति में समर्पित हो जाता है। जो यात्रा द्वैत से प्रारम्भ हुई थी यहाँ पहुँच कर अद्वैत में परिणत हो जाती है। अब जीव को बस एक ही स्रोत, एक ही सत्ता, एक ही शक्ति, एक ही आधार, एक ही रचना और एक ही रचनाकार दृष्टिगोचर होता है। **''तत् त्वं असि''** का उद्घोष हो जाता है। यही समर्पण योग है। इसी को पाने, इसी स्थिति का लाभ कराने के लिए हमारे श्री गुरु महाराज ने इस सत्संग रूपी गंगा को प्रवाहित किया है। आज भी उन्हीं की शक्ति से, करुणा और प्रेम से यह धारा अनेकों प्राणियों का उद्धार करती जा रही है। हम सब के वे ही एक आधार हैं, उनका ही संबल है, उन्हीं पर भरोसा है। उन्हीं से प्रार्थना है हम सब पर अपनी अहैतुकी कृपा बनाए रखें। गुरु महाराज हम सब पर दया करें।

**

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का सत्संग कार्यक्रम

1. पीलीभीत :

दिनांक : 19 (सायं से), 20 एवं 21 जून 2015

सत्संग स्थल : श्री अग्रवाल सभा पीलीभीत

सम्पर्क सूत्र : श्री रामेन्द्र प्रसाद शर्मा मो. 9412296578

2. जयन्त सिंगरौली :

दिनांक : 14 (सायं से), 15 एवं 16 जुलाई 2015

सत्संग स्थल : श्रमिक सदन, जयन्त गोल मार्केट के पास

सम्पर्क सूत्र : श्री फतेह बहादुर सिंह मो. 09826134892

रब के नाम

— श्री फ़साहत अनवर

उसी को याद करना है, उसी का नाम लेना है ।
भुलाकर इस जगत को उसका दामन थाम लेना है ।

जिसे पीकर सिवा उसके दिखाई कुछ न दे हमको,
हमें हाथों में ऐ साकी अब ऐसा जाम लेना है ।

हजारों रूप हैं उसके हजारों नाम हैं उसके,
कभी घनश्याम लेना है कभी श्री राम लेना है ।

दुखों में नाम उसका हर समय रहता है होठों पर,
नहीं भूले से भी हमको कोई सुखधाम लेना है ।

छला करते हैं जो पाखंड से भक्तों को दुनिया में,
हमें ऐसे लुटेरों से न कोई काम लेना है ।

तुम्हें देखा तुम्हें चाहा तुम्हें पूजा सदा मोहन,
तुम्हारा नाम ही ऐ देव सुब्हो-शाम लेना है ।

मोहब्बत करने वाले प्यार का सौदा नहीं करते?
वो पागल हैं जिन्हें अपनी वफा के दाम लेना है ।

ये दुनिया क्या सिला देगी भला मेरी अक़ीदत का,
मुझे तो उस विधाता से सदा इनआम लेना है ।

बहुत दुखदायी है परमेश्वर ये शीत का मौसम,
तेरे अनवर को जीने के लिए कुछ धाम लेना है । **

निर्णय : आध्यात्मिक पहलू

— डॉ० मुकुन्द श्रीवास्तव

ज्ञानियों के मध्य वर्ता हो रही थी । उसमें एक बात उभर कर आयी कि जितने भी धार्मिक ग्रन्थ हैं उनमें कथा-कहानियाँ तो हैं ही, साथ ही साथ एक निर्णय भी है । व्यक्ति निर्णय अपनी 'विवेक-शक्ति' द्वारा लिया करता है । ग्रन्थों की कहानियों से स्पष्ट है कि व्यक्ति के आध्यात्मिक-विकास के बाद उसकी विवेक शाक्ति जागृत होती है और इसका प्रभाव उसके निर्णय पर पड़ता है । भावावेश में सही निर्णय नहीं हो सकता है । उदाहरण स्वरूप 'श्री भरत जी' तो अपने भ्राता को मना कर वापस राजधानी लाने गए थे । रास्ते में केवल यही एक विचार था । समीप गए, मुलाकात हुई और मन की क्लान्ति दूर हुई । पुनः जब शान्तचित्त हो विचार किया तो विवेक-शक्ति ने जो निर्णय दिया उससे सभी धन्य-धन्य हो उठे । उसी तरह अर्जुन का मोहग्रस्त हो जाना एक सामान्य मानवीय मन की प्रतिक्रिया थी, जो हम सभी के साथ उन परिस्थितियों में संभव है । उस विषाद का प्रतिफल एक सामान्य मानवीय निर्णय रहा- 'मैं युद्ध नहीं करूँगा'। वहीं दूसरी ओर ''साकार ब्रह्म-स्वरूप परम् पिता भगवान श्री कृष्ण'' ने जो निर्णय दिया वह न केवल उस समय के अनुकूल सिद्ध हुआ वरन् युगों-युगों तक क्लान्त अवस्था में पड़े मनुष्यों को दिशा-निर्देश देने का कार्य किया ।

परमसंत परम् पूज्य श्री नरेन्द्र कुमार जी (छोटे चाचाजी) के एक लेख में इसी बात पर प्रकाश डाला गया है । एक जिज्ञासु का एक महात्मा से प्रश्न था- 'कोई आदर्श संसारी कैसे बन सकता है या संसार में अच्छी तरह रहने के लिए क्या करना चाहिए, प्रश्न के उत्तर में महात्मा जी ने जवाब दिया - ''ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । यह क्यों जरूरी है, आईये इस पर विचार करें ।

हमारे जीवन में नित्यप्रति, क्षण प्रतिक्षण परिस्थितियाँ बदल रही हैं । हमें हर परिस्थिति का सामना करना होता है । हर परिस्थिति के अनुसार हमें कुछ न कुछ निर्णय भी लेना होता है । इन्हीं निर्णयों से हमारे जीवन की दिशा तय होती है, हमारा भविष्य बनता है और समाज में हमारी छवि स्पष्ट होती है । यदि हमारे निर्णय लोभ, मोह, काम, क्रोध या अहंकार के वशीभूत होंगे तो अच्छे नहीं, केवल दुष्परिणाम ही देखने को मिलेंगे ।

इस विषय पर विचार इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि आधुनिक समाज में सभी इतने व्यस्त हैं कि अपने उत्थान के लिए भी लोगों के पास

समय नहीं रह गया है । आज युवा पीढ़ी पहले से कहीं ज्यादा उन्मुक्त वातावरण में जी रही है इन्हें जो सुविधाएँ मिली हैं वह बेहतरीन हैं । लेकिन यही सुविधाएँ अच्छा और बुरा दोनों तरह का परिणाम दे सकती हैं । यदि हमारे निर्णय शान्तचित्त स्थिति में हों, सामाजिक और आध्यामिक पहलुओं को ध्यान में रख कर लिए जायें तो परिणाम अच्छा हो सकता है, वहीं जल्दबाजी, दबाव या भावावेश में लिए गए निर्णय हमें विपरीत स्थिति में ही धकेलते हैं और ऐसे परिणाम दिखाते हैं कि हम खुद को लज्जित महसूस करते हैं, समाज में उपहास के पात्र भी बनते हैं । अपनी जीविका के लिए, भविष्य के लिए, परिवार के लिए काम तो हम सबको करना ही है और विभिन्न अवसरों पर निर्णय भी लेना ही है और इन निर्णयों का लघु तथा दूरगामी परिणाम भी देखना ही है। यहाँ एक बात तो स्पष्ट है कि देशकाल और परिस्थिति से परे एक सार्वभौमिक और सार्वकालिक सत्य यह है कि हम हर कार्य अपने को सुखी व जीवन को शान्त और आनन्दित बनाने के लिए करते हैं इसलिए इस निर्णय-शक्ति के विकास पर विचार आवश्यक है ।

हमारी 'वेदकालीन सभ्यता' में लोगों की जीवन-चर्या ही यही थी कि ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरुकुलों में विद्यार्थी विद्या अध्ययन के साथ-साथ अपने स्वास्थ और चरित्र पर विशेष ध्यान देते थे ताकि जब 'गृहस्थ-आश्रम' में प्रवेश करें तो जीविकोपार्जन और जीवन का यह नियम चले कि धर्म के अनुसार धन की प्राप्ति हो और धन का खर्च धर्म के नियमों के अनुसार हो । इस बात पर ध्यान दिया जाता था कि व्यक्ति 'कर्तव्य-निष्ठ', 'विचारवान', 'सामाजिक' और 'धर्मभीरु' हो क्योंकि इसी जीवन-चर्या से व्यक्ति के लिए वर्णित चार लक्ष्य- 'अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति सहज हो सकती है ।'

आज के परिप्रेक्ष्य में इन सिद्धान्तों पर अमल असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर है । वर्त्तमान में लोगों के पास समय नहीं है, साधन नहीं हैं, विपरीत परिस्थिति के लिए संयम भी नहीं है तो फिर यह आदर्श स्थिति हम कैसे प्राप्त करें? एक और चीज जो देखने में आती है कि गलत करने वालों का भौतिक विकास तेजी से हो जाता है तो हम इधर विचार फिर क्यों करें ?

इस संसार का सत्य यह है कि यह एक शक्ति के तहत चलता है जिसे नास्तिक 'पावर या प्रकृति' कह कर बुलाता है और विभिन्न धर्मावलम्बी अपने धर्म के ईश्वर का नाम लेकर पुकारते हैं । इस ईश्वरीय व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य ही यही है कि जीवों का कल्याण हो, जीवन मर्यादित हो और आनन्द बना रहे । ऐसे आचरण के विपरीत जब कोई समाज व्यवहार करने लगता है, भौतिकवादी हो जाता है तब-तब ऐसी शक्तियों का आगमन होता है जो धर्म की पताका फहराते हैं, लोगों को राह दिखाते हैं और दु:खीजनों को शीतलता देते हैं । वर्तमान में हमारे गुरु महाराज ब्रह्मलीन परमसंत डा. चतुर्भुज सहाय जी ने अभी

के ऊहापोह में फँसे लोगों को एक सहज, सुगम और आसान उपाय बताया जिससे थोड़े ही समय में व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास संभव है । आन्तरिक विकास का यह काम हम गुरु महाराज की छत्रछाया में बहुत आसानी से कर पाते हैं जिसका प्रभाव यह होता है कि यहाँ लोगों की विवेक शक्ति ऐसी जगती है कि परिस्थिति का अच्छा या बुरा होना भी सृष्टि का क्रम समझते हैं; फलतः उनकी धीरता और गम्भीरता प्रभावित नहीं होती । लगातार अभ्यास करने से भौतिक जगत् की इच्छा ही समाप्त हो जाती है और तब मनुष्य लोभ, मोह आदि से ग्रसित नहीं होता । ऐसे मनुष्यों पर तमाम बाधाओं और परेशानियों का भी कोई असर नहीं होता और परिस्थितियों के दबाव में उनका कोई निर्णय गलत नहीं होता है। जीवन आनंद और सुखपूर्वक बीतता है । यहाँ जिन लोगों ने इस सिद्धान्त पर चलकर अपना जीवन व्यतीत किया वह किस तरह मिसाल बने यह हम सभी जानते हैं । अतः यह आवश्यक है कि हम अपने गुरु महाराज के आदेशानुसार सुबह-शाम बैठते रहें ताकि उनकी निगाह हम पर पड़ सके और उनके अनुसार हमारा जीवन पूर्ण सुखमय और शान्ति मय बन सके । गुरु महाराज सब पर दया करें । **।। ओ३म् शम् ।।**

साहित्य परिचय

आध्यात्मिक विषय-मीमांसा

यह पुस्तक दो खण्डों में प्रकाशित है। प्रथम खण्ड में ईश्वर की उत्पत्ति, ईश्वर और जीव, आत्माओं के भेद, साकार और निराकार के दर्शन, कर्मों के भोग, रोग निवारण, नवदुर्गा शक्ति, उपासना, भगवान के अवतार, तीर्थाटन, भजन, गायत्री मंत्र, योग विद्या एवं रूहानी ताकत सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर प्रश्नोत्तर रूप में इस पुस्तक में लिखे गये हैं।

द्वितीय खण्ड के विषय हैं- अध्यात्म मार्ग पर चलने का सरल उपाय क्या है? गुरु शक्ति क्या है? और क्या-क्या कार्य करती है? इस मार्ग में कौन-कौन सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, अभ्यास में साधकों पर कैसी अवस्थायें आती हैं, कैसे-कैसे अनुभव हुआ करते हैं और उनके क्या रहस्य हैं, उनसे आगे बढ़ने के क्या उपाय हैं?

यह खण्ड उन साधकों और जिज्ञासुओं के लिए अधिक लाभप्रद है जो अध्यात्म मार्ग में कुछ शकाओं का अनुभव कर रहे हैं। अध्यात्म विद्या के साधकों को इस पुस्तक के दोनों खण्ड अपने पास अवश्य ही रखना चाहिए और बारम्बार पढ़ना चाहिए ।

जीवन दर्शन

परम पूज्य समर्थ गुरु महाराज की आदर्श जीवनी परम भागवत पूज्य पंडित जी महाराज द्वारा लिखी गई है।

गुरु का ध्यान, गुरु का नाम, गुरु का काम-उनके जीवन के अंग बन गए थे। गुरुदेव की उनके लिए आज्ञा थी कि- 'जो आन्तरिक साधना हमने बताई है, उसे शास्त्रों, धर्म ग्रन्थों आदि से प्रतिपादित करके संसार के सामने रखो और विश्व में फैलाओ। इस आदेश का उन्होंने अन्त तक पालन किया। उन्होंने आत्म ज्ञान प्राप्ति की इस सहज साधना को लोक के लिए इतना सुलभ बना दिया कि आज लाखों ही नर-नारी इस मार्ग पर चलकर शान्ति लाभ ले रहे हैं।

जो भी इस जीवनी को पढ़ेगा और उससे प्रेरणा प्राप्त कर निश्चय ही वह संसार में सुखपूर्वक रहता हुआ आत्म ज्ञान प्राप्त कर परम शान्ति को प्राप्त होगा। **

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र कोटा का सत्संग कार्यक्रम

दिनांक	:	4 (सायं से), 5 एवं 6 जुलाई 2015
सत्संग स्थल	:	गीता सत्संग आश्रम, किशोर सागर के पास
सम्पर्क सूत्र	:	श्री तुलसी प्रसाद शर्मा मो. : 07442471606
	:	श्री जयराज सिंह शेखावत मो. 09414317369
आवास व्यवस्था	:	श्री अणुव्रत भवन, किशोर सागर नहर के पास

समाचार इधर-उधर के :-

नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए....

अपनी नेत्र ज्योति को बचाकर रखना हमारा कर्त्तव्य है। यदि हम कुछ आसान नियमों को अपना लें तो हम नेत्र ज्योति को बचा कर रख सकते हैं:-

- प्रात: सुबह उठकर अपनी आँखों को ठंडे जल से धोना चाहिए। सोने से पूर्व भी अपनी आंखों को अच्छी तरह से धोकर सोना चाहिए ताकि दिन भर की धूल साफ हो सके। नहाते समय हो सके तो आई कप में ठंडे जल से व्यायाम करें।
- पार्क में मुलायम घास पर नंगे पांव 15 से 20 मिनट तक टहलना आंखों की दृष्टि के लिए उत्तम व्यायाम माना जाता है।
- सोते समय सरसों के तेल की पैरों के तलवे पर मालिश नियमित करनी चाहिए।
- दिन में काम करते समय जब आंखों में थकान महसूस हो तो अपने हाथों की हथेलियों के कप बनाकर उन्हें आँखों पर रखने से आराम मिलता है। इस क्रिया को दिन में तीन-चार बार दोहराया जा सकता है।
- आंखों की नाड़ियों का मल दूर करने के लिए सूत्र नेति या जल नेति करें।
- नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए सूर्य नमस्कार, ताड़ आसन, भुजंग, मकर, शवासन और नौका आसन करने से लाभ मिलता है। आसन के साथ कुछ प्राणायाम करके इस दृष्टि दोष से दूर रह सकते हैं जैसे दीर्घश्वास, नाड़ी शोधन और कपालभाति।
- दिन में आँखें भीचने और आँखें झपकाने वाली क्रिया को करते रहें। पढ़ते समय, लिखते समय, टी.वी.देखते समय बीच-बीच में पलकें झपकाते रहने से आँखों में ताजगी बनी रहती है।
- आहार में विटामिन ए.बी., सी.डी. की प्रचुर मात्रा लें। नियमित रूप से गाजर, शलगम, पालक, पत्तागोभी, टमाटर, मटर, सोयाबीन, आंवला, अमरूद, पपीता आदि का सेवन करें। तेज मिर्च मसालों और तले हुए खाद्य पदार्थों से दूर रहें।
- आँखों में सूजन आने पर, पानी अधिक निकलने पर और लाली आने पर डॉक्टरी जांच समय पर करवायें। यदि लगातार सिर दर्द भी रहे तो अपनी आँखों की जांच विशेषज्ञ से करवाएं। चश्मा लग जाने की स्थिति में उसे पहनें, उससे भागे नहीं। **

दिवंगत आत्माओं के लिए प्रार्थना

परम पूज्य श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि मार्च 2015 माह के दौरान रामाश्रम सत्संग (मथुरा) से सम्बन्धित सभी दिवंगत आत्माओं को निजधाम में स्थान दें एवम् शोक संतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें ।

वर्ष : 82 [मई-2015] अंक : 10

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

☀ साधन के नियम ☀

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्य उद्देश्य है।
2. साधन प्रत्येक मास की 20-21 तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की 15 तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।
3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।
4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।
5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।
6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 150/= है। एक प्रति का शुल्क रुपये 16/= है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये 20/= है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 1400/= है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।
7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 1350/ है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 2500/ है।
8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनी-आर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो "साधन हिन्दी मन्थली" के नाम 813, डैम्पियर नगर, मथुरा-281001 को भेजा जाये।
9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनी आर्डर ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence to Post without Prepayment: Licence No.-AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd.No.MTR/28/15-17: R.N.I. No- 2358 / 57
Date of Publication: 8th to 15th of every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com; sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800